जे. एण्ड के. अकॉदमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़
जम्मू

द्विमासिक

हिन्दी

फरवरी-मार्च 1997

पूर्णांक 135

द्विमासिक

हिन्दी

अंक : 6

फरवरी-मार्च 1997

वर्ष : 32

पूर्णांक 135

प्रमुख सम्पादक

बलवंत ठाकुर

सम्पादक

डॉ० उषा व्यास

संपर्क : सम्पादक, शीराज़ा हिन्दी, जे० एंड के० अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर
एंड लैंग्वेजिज जम्मू ।
फ़ोन : 579576 : 577643

मूल्य : 2 रुपये

वार्षिक : 10 रुपये

प्रकाशक : बलवंत ठाकुर, सेक्रेटरी, अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर
एंड लैंग्वेजिज़ जम्मू 180001

मुद्रक : मैसर्ज़ रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोटकिशन चन्द जालन्धर—144004

इस अंक में—

सम्पादकीय—

भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम भर नहीं है। वह सम्पूर्ण राष्ट्र की संस्कृति एवं अस्मिता की पोषक और उसे समृद्ध करने वाली है। वह राष्ट्र को उसकी एक स्वतन्त्र पहचान दिलाती है।

विदेशी सत्ता ने अंग्रेज़ी को अनिवार्य नहीं बनाया था अपितु उसका प्रयोग बढ़ाया था। हमारे संविधान निर्माताओं द्वारा हिन्दी को राजभाषा बनाये जाने पर भी उसे न तो उचित सम्मान ही मिला न उसका प्रयोग ही बढ़ा। जो लोग हिन्दी का विरोध करते हैं जाहिर है वे देश में अलगाव के पक्षधर हैं।

नगरों, महानगरों में अपनी-अपनी आर्थिक आवश्यकताओं से जुड़े लोग काम-धंधे के लिए दूरदराज़ गांवों, कस्बों से आते हैं ऐसे में उनको भाषा ही जोड़ती है। और वह भाषा हिन्दी है जो जन-जन के बीच पुल का काम करती है।

मात्र राजनीतिक दलों का जुड़ाव ही राष्ट्रीय अखण्डता का पर्याय नहीं है। अपेक्षा तो यह है कि राजा से रंक, धर्मप्रचारक से व्यवसायी और राजनेता से लेकर समाज सेवी तक हर कोई हिन्दी अपनाये जिसे जन संपर्क की आवश्यकता है।

स्वतन्त्रता के इस स्वर्ण जयंती वर्ष में, भारतीय जनता, संचार जगत, हिन्दी सेवी संस्थाएं तथा राष्ट्रभाषा प्रेमी लोग राष्ट्रवाणी को स्वतन्त्र रूप से प्रस्थापित करने के सामूहिक प्रयास में उद्यत हों ताकि यह राष्ट्र की मूकता को समाप्त करने का ऐतिहासिक वर्ष सिद्ध हो।

—उषा व्यास

जातीय संघर्ष एवं बुद्धनिर्दिष्ट समाधान

□ डा० वैद्यनाथ लाभ

एकता-अनेकता, समता-विषमता, मैत्री-द्वेष आदि हमारे मन के ही दो विपरीन पक्ष हैं। जहां सभ्यता के आरम्भ से ही यदि मनुष्य को एक दूसरे के साथ मिलकर रहने की आकांक्षा थी, तो वहीं एक-दूसरे के समक्ष अपनी-अपनी श्रेष्ठता को सिद्ध करने की आकांक्षा भी थी। वस्तुत: ये हमारी मानसिक प्रवृत्तियां हैं, जिन्हें बौद्ध अभिधर्म दर्शन में 'चैतसिक' की संज्ञा दी गई है। ये चैतसिक धर्म हमारे चित्त में सदैव विद्यमान रहते हैं और अपने-अपने ढंग से हमें प्रभावित करने के प्रयास में संलग्न रहते हैं। जब जिस चैतसिक का प्रभाव बढ़ जाता है, तब हम उसी के अनुसार अच्छा या बुरा कर्म करने लगते हैं। मानव-चित्त अपने-आप में ऐसे ही विपरीत चैतसिकों का एक समुच्चय या भण्डार है।

प्रकृति ने हर व्यक्ति को बाह्य रूप-रंग तथा आंतरिक विचारों की दृष्टि से भिन्न-भिन्न प्रकार का बनाया है। अत. स्वाभाविक रूप से समाज में लोगों के मध्य हमें वैचारिक मतभेद दिखाई पड़ते हैं। वर्ण या जाति-भेद तथा यदा-कदा संघर्ष भी, मानव-मन की इन्हीं वैचारिक भिन्नताओं का प्रकटीकरण है।

अस्तु, जहां तक वर्ण या जाति-भेद का प्रश्न है, तो भारतीय समाज के सन्दर्भ में इस व्यवस्था का सूत्रपात ऋग्वैदिक काल में हुआ। आरम्भ में कर्म एवं व्यवसाय के आधार पर समाज के लोगों का वर्ण-निर्धारण हुआ। पूजा-पाठ, यज्ञ-योग, पौरोहित्य, मन्त्रणा आदि जैसे बौद्धिक कार्य करने वाले ब्राह्मण, प्रशासन, देश-रक्षा आदि में संलग्न राजन्य (क्षत्रिय); कृषि, उद्योग, व्यवसाय आदि में संलग्न लोग वैश्य एवं दास, श्रमिक आदि वर्ग के लोग शूद्र की संज्ञाओं से अभिहित हुए। वेदों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि एक ही पिता की कई सन्तानें विभिन्न व्यवसायों में लगे होने से विभिन्न वर्णों की संज्ञाएं प्राप्त करती थीं। किन्तु, काल के प्रवाह के साथ विभिन्न कारणों से इस कर्मगत विभाजन ने जातिगत आधार

को प्राप्त कर लिया। बुद्धकाल तक आते-आते तो इसने न केवल सामाजिक दृढ़ता प्राप्त कर ली, बल्कि उच्च निम्न, स्पृश्य-अस्पृश्य जातियों की विद्वेषपूर्ण भावना को भी जन्म दे दिया। वर्तमान समय में तो यह व्यवस्था इतनी सुदृढ़ हो चुकी है कि सरकारी कानूनों के बावजूद यह समाप्त नहीं हो पा रही है। सामाजिक न्याय के नाम पर जातिगत भेदों व विद्वेषों को उभारने की कुचेष्टाएं हो रही हैं तथा समाज इन बन्धनों में जकड़ता ही जा रहा है।

कई अन्य बातों की भांति वर्ण-व्यवस्था को भी भारतीय परिवेश में अलौकिक पुरुष ब्रह्मा द्वारा निर्धारित करने के प्रयास हुए। ऋग्वेद की पुरुष सूक्त की एक ऋचा के अनुसार—

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहु: राजन्य: कृत:।
उरु तदस्य यद्वैश्य: पदभ्यां शूद्रो अजायत् ।।"[1]

यद्यपि सैद्धांतिक रूप में देखा जाए तो इस अवधारणा में कोई आपत्तिजनक बात नहीं लगती। बौद्धिकता का प्रस्फुटन मुख (ब्राह्मण) से निःसृत वाणी के माध्यम से ही होता है। इसी प्रकार भुजा (राजन्य) शक्ति का प्रतीक है। उस प्रदेश (वैश्य) धनधान्य एवं व्यवसाय की ओर संकेत करता है तथा चरणद्वय (शूद्र) सम्पूर्ण शरीर का भारवहन करके उसे इस योग्य बनाते हैं कि वह गतिशील रह सके। इस रूप में यदि देखा जाए तो चतुर्थ वर्ण (शूद्र) समाज का एक अपरिहार्य, अनिवार्य व अत्यधिक महत्वपूर्ण अंग है। यह सत्य है कि शरीर में इसकी स्थिति सबसे नीचे है, किन्तु इससे इस की महत्ता में कहीं भी न्यूनता नहीं आती और न आनी चाहिए।

किन्तु, भारतीय इतिहास की गति कुछ अन्य प्रकार से ही हुई। ऋग्वैदिक काल में कर्माधारित वर्ण-व्यवस्था धीरे-धीरे जाति-व्यवस्था में परिवर्तित होती गई। उत्तरवैदिक-काल आते-आते ही इसमें रूढ़ियां आती गईं। अन्तर्वर्णीय विवाह आदि का प्रचलन कम होता गया एवं शूद्रों को समाज का निम्न वर्ग माना जाने लगा। जाति-व्यवस्था उत्तरवैदिक काल में इतनी सुदृढ़ हो चली थी कि देवताओं का भी जाति-विभाजन कर दिया गया। अग्नि एवं वृहस्पति देवताओं में ब्राह्मण थे; इन्द्र, वरुण, यम क्षत्रिय थे; वसु, रुद्र, विश्वेदेव एवं मरुत विश (वैश्य) थे तथा पूषा शूद्र थे। इसी समय यह भी कहा गया कि ब्राह्मण वसन्त ऋतु है, क्षत्रिय, ग्रीष्म ऋतु एव वैश्य वर्षा ऋतु है।[2] उत्तर वैदिककाल में आर्यों एवं आर्येतर के सम्मिश्रण के फलस्वरूप चार वर्णों के स्थान पर वर्णों एवं जातियों की संख्या बढ़ती चली गई। कतिपय कलाओं एवं शिल्पकारों के उद्भव के चलते भी व्यवसायों पर आधारित बहुत-सी उपजातियों की सृष्टि हुई।

वैश्य एवं शूद्र से ब्राह्मण-क्षत्रिय उच्चतर समझे जाते थे। किन्तु उन दोनों (ब्राह्मण-क्षत्रिय) में कौन उच्चतर थे, इसके बारे में उनके मध्य मतभेद तथा संघर्ष सतत बना रहा।

बुद्धकाल तक पहुंचते-पहुंचते सामाजिक व्यवस्था और भी जटिल हो चली थी। सामाजिक विषमता एवं जन्म के आधार पर ऊंच-नीच का भेदभाव गहराई तक जड़ें जमा

चुका था। शूद्रों की स्थिति और भी बदतर हो चली थी तथा वे अब अस्पृश्य माने जाने लगे थे और सामाजिक मान्यता नहीं मिलने पर भी धीरे-धीरे अन्तर्जातीय विवाहों के कारण अनेक जातियां-उपजातियां बनती जा रही थीं।

उधर ब्राह्मण एवं क्षत्रिय के मध्य श्रेष्ठता के लिए संघर्ष बना हुआ था। माथुर राजा अवन्तिपुत्र को हम यह कहते हुए पाते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, शुक्ल वर्ण है, पवित्र वर्ण है, ब्रह्मा के मुख से उसकी उत्पत्ति हुई है, वही ब्रह्मा का प्रतिनिधि है।[3] दूसरी ओर क्षत्रिय लोग अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने में प्रयत्नरत थे। पालि साहित्य में इस प्रकार के दृष्टांत अनेक दृष्ट होते हैं —

"खत्तियो सेट्ठो जने तस्मिं, यो गोत्तपटिसारिणो।"[4]

जनमानस में एक विश्वास-सा बन गया था कि स्वयं स्रष्टा ने ही समाज का वर्गीकरण विभिन्न जातियों में करके उनके कर्म निर्धारित कर दिये हैं। इस धारणा के उल्लेख कई जातक कथाओं में भी मिलते हैं।

समाज में ब्राह्मण एवं क्षत्रिय के बाद गृहपति, श्रेष्ठि तथा साधारण वैश्यों का स्थान आता था जिसके अन्तर्गत उच्चवर्गीय शिल्पियों का भी समावेश था। वैश्य वर्ग के पश्चात् नाम आता है भूमिहीन श्रमिकों का एवं अन्त में उल्लेख मिलता है चांडाल, निषाद, वेण, रथकार, पुक्कुस आदि हीन जातियों का जो दारिद्रय, भोजन वस्त्रादि के अभाव एवं समाज की उच्च जाति के लोगों की उपेक्षा के शिकार थे।[5] इन जातियों के लोगों को नीच-कुलोत्पन्न कहा गया एवं इनके कर्म को भी नीच शिल्प की संज्ञा दी गई। पालि तिपिटक से ज्ञात होता है कि आरम्भ में हीन जाति तथा हीन शिल्प में भेद था, किन्तु कालांतर में दोनों अभिन्न हो गये तथा उपर्युक्त जातियों के सदस्य हीनकर्मा होने के कारण समाज में अधम तथा तिरस्कृत समझे जाने लगे। गाली के रूप में चांडाल और वेण शब्दों के प्रयोग किये जाने के दृष्टांत भी जातक कथाओं में अनेक उपलब्ध होते हैं। एक क्रुद्ध रानी का प्रसंग आता है जिसने क्रोधावेश में अपनी पुत्री से कहा—'तू वेणी है, चांडाली है।'[6] इसी प्रकार ब्राह्मण ने अपनी दुश्चरित्रा पत्नी को पापिनी तथा चांडाली कहा।[7] शृगाल जातक में चांडाल की तुलना शृगाल से की गई है, क्योंकि जिस प्रकार जानवरों में शृगाल है, उसी प्रकार मनुष्यों में चांडाल। चांडाल इतने अपवित्र समझे जाते थे कि उनके स्पर्श से हवा भी दूषित हो जाती है, ऐसा माना जाता था।

जातक कथाओं में वर्णित चांडाल जाति की दीन-हीन अवस्था की पुष्टि धर्मशास्त्र से भी होती है। आपस्तम्ब के अनुसार चांडाल को अस्पृश्य कहा गया है।[8] यदि किसी ग्राम में चांडाल आ जाए तो उस समय आपस्तम्ब तथा गौतम वेद का पाठ या अध्ययन स्थगित कर देने का आदेश देते हैं।[9] मनु कहते हैं कि यदि कोई चांडाल देख रहा हो तो उस समय ब्राह्मण को भोजन नहीं करना चाहिए।[10] इस प्रकार हम पाते हैं कि समाज में चाण्डाल को नीच तथा अधम माना जाता था एवं चांडाल योनि में जन्म पाने का अर्थ ही था जीवन के सबसे बड़े अभिशाप का भागी बनना।

बुद्ध ने अम्बट्ठसुत्त में यद्यपि "खत्तियो सेट्ठो......" की बात कर ब्राह्मण से क्षत्रिय

को श्रेष्ठ बताया किन्तु वे इस धारणा को भी सिद्ध करने के पक्ष में नहीं थे। जाति भेद के कारण जातीय संघर्ष एवं विद्वेष की सम्भावना को देखते हुए भगवान् बुद्ध ने इस व्यवस्था को ही निरर्थक एवं अनुपयोगी बताया। तिपिटक के अनेकों सुत्त उनके उक्त विषयक जाति-विरोधी विचारों एवं तद्‌जनित संघर्षों के समाधान हेतु विचार प्रस्तुत करते हैं। दीघनिकाय के अम्बट्ठसुत्त, अग्गञ्ञसुत्त; मज्झिमनिकाय के अस्सलायनसुत्त, एसुकारिसुत्त, माधुरियसुत्त; सुत्तनिपात के वसलसुत्त, वासेट्ठसुत्त आदि में बुद्ध के जातिविषयक दृष्टिकोण स्पष्टरूपेण दृष्ट होते हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने धम्मपद की गाथाओं एवं जातक कथाओं में भी जाति-व्यवस्था पर तीक्ष्ण प्रहार किए हैं।

बुद्ध की दृष्टि में कोई व्यक्ति न तो जाति-विशेष में जन्म लेने से ब्राह्मणत्व को प्राप्त होता है और न ही शूद्रत्व को प्राप्त होता है, बल्कि सच देखा जाए तो उसके सुकर्म या कुकर्म ही उसे ब्राह्मण या शूद्र बनाते हैं—

"नजच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
कम्मुना वसलो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणो।"[11]

कर्म को ही प्राणिमात्र की सुगति-दुर्गति, श्रेष्ठता-निम्नता, यश-अपयश, लाभ-हानि आदि का एकमात्र नियामक मानने वाले बुद्ध जाति की श्रेष्ठता मात्र को भला कैसे स्वीकार करते? उनके विचार को स्पष्ट करते हुए नागसेन कर्म को ही व्यक्ति का बन्धु-बान्धव' दायाद, सब कुछ मानते हैं—"भासितं पेतं, महाराज, भगवता – 'कम्मस्सका, माणवा, सत्ता, कम्मदायादा, कम्मयोनी, कम्मबन्धू, कम्म-पटिसरणा। 'कम्मं सत्तें विभज्जति यदिदं हीनप्पणीततताया' ति।"[12]

दीघनिकाय के सोणदण्डसुत्त ब्राह्मण के पांच लक्षण बताए गए हैं, यथा—ब्राह्मण माता-पिता दोनों ओर से कुलीन होता है; वेदपाठी, मन्त्रधर, त्रिवेद पारंगत होता है; अभिरूप तथा अत्यन्त गौरवपूर्ण होता है; शीलवान् तथा सुन्दर व पवित्र आचरण से युक्त होता है; तथा मेधावी, पण्डित एवं यज्ञ व दक्षिणा ग्रहण करने वालों में अग्रणी होता है। किन्तु यहां यह भी स्पष्ट किया गया है कि यदि पांच में से केवल शील व पवित्र आचरण से ही युक्त रहे तो व्यक्ति ब्राह्मण कहला सकता है, और यदि अन्य सारे लक्षणों से युक्त रहने पर भी शील व पवित्र आचरण न रहे तो व्यक्ति ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता।

शील व पवित्र आचरण एवं ज्ञान पर बुद्ध ने इतना अधिक बल दिया कि उन्होंने इन गुणों से सम्पन्न व्यक्ति को चारों वर्णों में ही नहीं अपितु मनुष्यों एवं देवताओं—सबों में श्रेष्ठ बताया—

"खत्तियो सेट्ठो, जने तस्मिं, यो गोत्तपटिसारिणो।
विज्जाचरणसम्पन्नो, सेट्ठो देवमानुसे ति।"[14]

वस्तुत: एक बात यहां विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बुद्ध ने तत्कालीन समाज में प्रचलित 'ब्राह्मण' शब्द का प्रयोग तो अपनी देशनाओं में अवश्य किया, किन्तु उनका 'ब्राह्मण'

जातिगत अर्थों की परिधि में ही सीमित नहीं था, बल्कि वह तो उससे भी कहीं अधिक व्यापक था। उनका ब्राह्मण से अभिप्राय ऐसे व्यक्ति से था जो सत्य और धर्म का पालन करता है तथा चरित्र से शुद्ध है —

"न जटाहि न गोत्तेहि, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चञ्च धम्मो च, सो सुची सो च ब्राह्मणो॥"[15]

बुद्ध किसी भी ऐसे व्यक्ति को जिसके चरित्र में अपरिग्रह, त्याग, वैराग्य, अनासक्ति या तृष्णा रहितता, क्षांति, अक्रोध, संयम, विवेक आदि सद्‌गुण हों उसे ब्राह्मण की संज्ञा देते हैं।[16]

बुद्ध की दृष्टि में सच्चा व श्रेष्ठ ब्राह्मण वही है जो उत्तम, श्रेष्ठ, वीर, महर्षि, विजेता, अकम्प्य, स्नातक एवं बुद्ध है —

"उसमं पवरं वीरं महेसिं विजिताविनं।
अनेजं नहातकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥"[17]

कर्म एवं चरित्र की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए बुद्ध ने कहा कि जिस प्रकार समुद्र में मिलने से पूर्व विभिन्न नदियां अपने-अपने नामों से जानी जाती है, यथा—गंगा, यमुना, सरस्वती, सरयू, गोदावरी आदि; किन्तु समुद्र में मिल जाने पर उनका पृथक् या स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो जाता है और उनके जल का एक ही स्वाद रह जाता है—लवणता; उसी प्रकार बुद्ध-शासन में प्रवेश से पूर्व व्यक्ति के विभिन्न जाति या वर्ण होते हैं, किन्तु बुद्ध-शासन में प्रवेश के पश्चात् उनके पूर्ववर्ती पृथक् अस्तित्व समाप्त हो जाते हैं और वे सभी एक ही जाति के हो जाते हैं—शाक्यपुत्रीय।

इस प्रकार बुद्ध ने जातिवाद से उत्पन्न संघर्ष का समाधान अपने कर्मवाद के रूप में निकाला। यही कारण था कि उनके संघ में उपालि जैसे शूद्र को बौद्ध संघ के संविधान-विनय पिटक के संकलन व सम्पादन का गुरुतर कार्य दिया गया और उसे सभी भिक्षुओं ने सादर स्वीकार किया। एक ओर जहां उन्होंने ब्राह्मणों की अपनी जाति मात्र की श्रेष्ठता के मिथ्याभिमान की भावना को दुत्कारा वहीं अन्य जाति वालों के समक्ष सुकर्म, सुन्दर आचरण व ज्ञान के बल पर ब्राह्मणत्व व अन्ततः निर्वाण प्राप्ति का उपाय भी बताया। बुद्ध ने इस आदर्श को सिद्धांत मात्र तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे अपने संघ के माध्यम से सक्रिय रूप भी दिया। यही कारण था कि उनके धर्म और संघ में ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक सभी वर्णों के लोग सम्मिलित हुए और बौद्ध धर्म भारत की सीमा को पार करता हुआ सम्पूर्ण पूर्व एवं दक्षिण-पूर्व के एशियाई देशों में फैल गया।

अन्ततः यहां यह भी उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं है कि बुद्ध के समय से लेकर आधुनिक समय तक भारत में अनेक विदेशी आक्रांता आए और यहां बस भी गए। प्राचीन-काल में भारत में आने वाली शक, हूण आदि को तो हिन्दू समाज ने शनैः-शनैः अपने में समायोजित भी कर लिया, किन्तु यह प्रक्रिया मध्यकाल तक आते-आते रुक गई। बाद में अंगरेज, डच, फ्रांसीसी, पुर्तगाली आदि अनेक विदेशी भी आए, जो मुख्य रूप से ईसाई थे। यद्यपि मुसलमानों एवं ईसाइयों का समायोजन हिन्दू समाज में उस प्रकार नहीं हुआ जैसा

कि शक-हूण आदि का हुआ था, तथापि धीरे-धीरे ये भी पृथक् धर्म व जाति के रूप में स्वीकृत हो गए। जातीय संघर्षों की पुनरावृत्ति भी यदा-कदा होती रही कभी वर्ग-संघर्ष के रूप में तो कभी अन्तर्जातीय विवाह या अन्य कारणों से, कभी दो धर्मावलम्बियों के बीच धर्मस्थलों की रक्षा के लिए तो कभी अपने धर्म को उच्चतर बताने के क्रम में। बुद्ध के विचारों से हमें इतना मार्गदर्शन तो अवश्य ही मिलता है कि संघर्ष की स्थिति आने पर विवेक एवं बुद्धि से निष्पक्ष बनकर स्थिति की समीक्षा की जाए। यदि विवेक-बुद्धि को स्थान दिया जाए जैसा कि बुद्ध ने बारम्बार जोर देकर कहा तो फिर जाति एवं धर्म के नाम पर फैलायी जाने वाली साम्प्रदायिकता के विष को अवश्य ही रोका जा सकता है। यह ठीक है कि वर्ण-व्यवस्था का सूत्रपात वैदिक काल में कर्म या व्यवसाय को ध्यान में रखकर किया गया था, किन्तु, अब आधुनिक परिप्रेक्ष्य में यह अपनी प्रासंगिकता खो चुकी है। दूसरी बात यह है कि कोई भी धर्म या सम्प्रदाय यदि सार्वभौमिकता एवं विश्वबन्धुत्व के विचारों का अनुमोदन नहीं करता, समाज में पारस्परिक भेद को बढ़ावा देकर जातीय संघर्ष का बीज वपन करता है, तो ऐसे धर्म या सम्प्रदाय को निरर्थक समझ कर छोड़ देना चाहिए। इस प्रसंग में बुद्ध एवं उन का धर्म विश्वबन्धुत्व, समता व करुणा के निकष पर शत-प्रतिशत खरा उतरता है। अतः बुद्धनिर्दिष्ट मार्ग की प्रासंगिकता जातीय संघर्ष के समाधान हेतु सदैव बनी रहेगी।

संदर्भ :

1. ऋग्वेद—10/90/12.
2. कैलाशचन्द्र जैन—प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएं, पृ० 33.
3. मज्झिमनिकाय (हिन्दी अनु०)—राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सभा, सारनाथ, 1964, पृ० 343, 390.
4. दीघनिकाय (1), नालन्दा संस्करण, पृ० 86.
5. मज्झिमनिकाय (हिन्दी अनु०), पृ० 391, 537.
6. जातक 4, पृ० 246.
7. तथैव
8. आपस्तम्ब धर्मसूत्र—2/1/2/8.
9. तथैव—1/3/9/15-17; गौतम धर्मसूत्र—16/19.
10. मनुस्मृति—3/239.
11. सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरक्षित (सं० +अनु०), मोतीलाल बनारसीदास, पृ० 34.
12. मिलिन्दपञ्हपालि—स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्ध भारती वाराणसी, पृ० 52.
13. दीघनिकाय, पृ० 104.
14. दीघनिकाय (1), पृ० 86,
15. धम्मपद—26/11.
16. तथैव—26/14-17.
17. तथैव—26/40.

गीता भाष्यों के सन्दर्भ में गांधी गीता-भाष्य

□ डॉ. मंजु उपाध्याय

भगवद् गीता शताब्दियो से हिन्दू धर्म का एक प्राचीन धर्मग्रंथ मानी जाती रही है, जिसकी प्रामाणिकता उपनिषदों एवं ब्रह्मसूत्र के बराबर है और ये तीनों मिलकर प्रस्थानत्रय कहलाते हैं। वेदांत के आचार्यों के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे अपने विशेष सिद्धांतों को इन तीन प्रामाणिक ग्रंथों के आधार पर उचित ठहराएं। अतएव विभिन्न आचार्यों ने अपने सम्प्रदाय के सिद्धांतों के समर्थन के लिए गीता का भी सहारा लिया और अपने सिद्धांत के अनुसार उसका भाष्य किया। भारतीय वाङ्मय में गीता की इतनी प्रतिष्ठा थी कि अन्य विद्वानों ने भी, जो किसी सिद्धांत विशेष के कट्टर पोषक नहीं थे, गीता का विवेचन करके विद्वानों की कोटि में प्रसिद्धि प्राप्त की इन टीकाओं के अध्ययन से प्रकट होगा कि मानव मस्तिष्क निरन्तर अग्रगामी है और चिंतन को बराबर समयानुसार, आवश्यकतानुसार परिवर्धित करता रहता है। आधुनिक काल तक विद्वान् गीता पर भाष्य लिखते रहे इससे यह भी ध्वनित होता है कि गीता के चिंतन में कालजयी होने का सामर्थ्य है।

गीता भाष्य :

गीता महाभारत के भीष्मपर्व का अंग है। महाभारत के टीकाकारों ने गीता पर भी टीकायें लिखीं। इस तरह गीता पर अनेक प्रामाणिक प्राचीन टीकायें उपलब्ध हैं।

आनन्द वर्धन की टीका "ज्ञानकर्मसमुच्चय"
भाष्कर की टीका "भगवदाशयानुसरण"
चतुर्भुज की टीका "तात्पर्य प्रकाशिका"
अभिनव गुप्त की टीका "भगवद्गीतार्थ संग्रह"

राजानक रामकंठ की टीका "सर्वतोभद्र"

बल्लभ की टीका "सत्तत्वदीपिका" (या "तत्वदीपिका")

मध्य की टीका "गीता भाष्य"

नीलकंठ की टीका

रामानुज की टीका "गीताभाष्य"। इस पर वेंकटनाथ ने "तात्पर्य प्रकाशिका" टीका

शंकर की टीका "गीता भाष्य"। इस पर धनपति ने "भाष्योत्कर्ष दीपिका" टीका

वादिराज की टीका।

अर्जुन मिश्र तथा देवबोध ने भीष्मपर्व पर टीकायें लिखीं किन्तु गीता पर उन की टीकायें उपलब्ध नहीं हैं। इस प्रसंग में जावा में कवि भाषा में लिखित महाभारत विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमें प्रामाणिकता सिद्ध करने के उद्देश्य से बीच-बीच में संस्कृत भाषा के मूल श्लोक उद्धृत किये गये हैं। अब तक कवि भाषा में महाभारत के पर्व 1, 4-6, 14-17 ही उपलब्ध हुए हैं। इनमें से भीष्म पर्व का प्रकाशन जे० गोंडा ने किया है। (J. Gonda, Het Gudjavacin che Bhismaparva, Bibliotheca Javanica, No. 7. 1936) उन्होंने गीता के प्राचीन जापानी संस्करण का अंग्रेजी अनुवाद (Tijdschriftveer Ind. Taal-Land-en volken kwnde, Vol· LXXV, 1935, pp 36 ff) भी प्रकाशित किया है। कविभाषा के भीष्मपर्व में जावा के राजा श्री धर्मवंश देगु अनन्त विक्रमदेव का उल्लेख है जो 11वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में उत्तरी जावा पर शासन कर रहे थे। इससे सिद्ध होता है कि उन्हीं के राज्यकाल में महाभारत का कवि भाषा में लेखन हुआ। इस तरह किसी विदेशी भाषा में गीता का प्राचीनतम रूपांतर कवि भाषा का ही है। चार्ल्स विल्किन्स ने पहली बार 1784 में गीता का अंग्रेजी अनुवाद किया जिससे पश्चिमी जगत् में भी गीता-अध्ययन के द्वार खुले। इस समय तक देश और विदेश में गीता के इतने अनुवाद और विवेचन हो चुके हैं कि उन सब का नामोल्लेख करना भी यहां सम्भव नहीं है। इसलिए गीता के प्रमुख भाष्यों का ही यहां उल्लेख किया जा रहा है।

गीता के भाष्यों का विवेचन :

इस समय विद्यमान गीता की टीकाओं में शंकर की टीका (788-820 ई०) सब से प्राचीन है। इससे पुरानी भी अन्य टीकायें थीं, जिन का उल्लेख शंकराचार्य ने अपनी भूमिका में किया है, परन्तु वे इस समय प्राप्त नहीं है। शंकर की टीका में अद्वैत वेदांत का प्रतिपादन है तथा निवृत्ति मार्ग का समर्थन। उनके अनुसार गीता में केवल तत्त्वज्ञान से मोक्ष प्राप्ति का सन्देश है। शंकराचार्य के दृष्टिकोण का विकास आनन्दगिरि (तेरहवीं शताब्दी) श्रीधर (चौंदहवीं शताब्दी) और मधुसूदन (सोलहवीं शताब्दी) ने किया। महाराष्ट्रीय सन्त तुकाराम और ज्ञानेश्वर महान भक्त थे किन्तु अधिविद्या में उन्होंने शंकराचार्य के मत को स्वीकार किया।

विशिष्टाद्वैत के आचार्य रामानुज (ग्यारहवीं शताब्दी) ने गीता के अनेक स्थलों पर शंकराचार्य की व्याख्या का खण्डन किया। उन्होंने अपनी टीका में संसार के मिथ्यांत और कर्मसंयास के सिद्धांत का विरोध किया तथा यामुनाचार्य द्वारा अपने "गीतार्थसंग्रह" में प्रतिपादित व्याख्या का अनुसरण किया। रामानुज ने गीता पर अपनी टीका में एक प्रकार का वैयक्तिक रहस्यवाद विकसित किया। मानवीय आत्मा के सुगुप्त स्थानों में परमात्मा निवास करता है, परन्तु आत्मा उसे तब तक नहीं पहचान पाती जब तक आत्मा को मुक्तिदायक ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता। वह मुक्तिदायक ज्ञान हमें, अपने सम्पूर्ण मन और आत्मा द्वारा परमात्मा की सेवा करने से प्राप्त हो सकता है। रामानुज यह स्वीकार करते हैं कि गीता में ज्ञान, भक्ति और कर्म इन तीनों का वर्णन है, परन्तु उनका मत है कि गीता का मुख्य बल भक्ति पर है।

द्वैत वेदांत के संस्थापक मध्व ने (ई० 1199-1276) भगवद्गीता पर एक संक्षिप्त टीका लिखी जिस की व्याख्या जयतीर्थ ने अपनी "प्रमेयदीपिका" में की है। मध्व ने "गीता तात्पर्य निर्णय" नामक एक विस्तृत निबन्ध भी लिखा। मध्व ने गीता में द्वैतवाद के सिद्धांत खोज निकालने का प्रयत्न किया। उनका मत है कि गीता में भक्ति मार्ग पर बल दिया गया है।

निम्बार्क (ई० 1162) के शिष्य केशव कश्मीरी ने गीता पर "तत्त्व प्रकाशिका" नामक एक टीका लिखी। यह टीका निम्बार्क के द्वैताद्वैत सिद्धांत के दृष्टिकोण से लिखी गई थी।

वल्लभ ने (ई० 1479) सौ श्लोकों में भगवद्गीता के उपदेश को उपनिबद्ध किया। उनकी यह रचना "शास्त्रार्थ प्रकरण" नाम से प्रसिद्ध है और शुद्धाद्वैत मत का प्रतिपादन करती है। उन्हीं के नाम वाले एक अन्य व्यक्ति ने सत्रहवीं शताब्दी में भगवद्गीता पर "तत्त्वदीपिका" नामक टीका लिखी। इस टीका के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में श्लोक उद्धृत हैं जो पूर्ववर्ती वल्लभाचार्य के प्रतीत होते हैं। तत्त्वदीपिका पर पुरुषोत्तम की टीका है।

इनके अतिरिक्त कश्मीर के शैव आचार्यों ने भी भगवद्गीता पर टीकायें लिखीं—रामकंठ ने (लगभग ई० 900-920) सर्वतोभद्र एवं अभिनवगुप्त ने (ई० 993-1015) भगवद्गीतार्थ संग्रह। ये दोनों ही टीकायें प्रत्यभिज्ञा दर्शन के दृष्टिकोण से लिखी गई है। इनके अनुसार कुरुक्षेत्र का युद्ध, जो गीता की भूमिका है, वास्तव में मानसिक अन्तर्द्वन्द्व है।

बीसवीं शताब्दी में गीता पर कुछ बड़े महत्त्वपूर्ण भाष्य लिखे गए। इससे पूर्व अनेक देशी भाषाओं में गीता के अनुवाद हो चुके थे और अंग्रेजी में भी एक से अधिक अनुवाद और अध्ययन। अपनी सरस शैली के कारण एडविन आर्नल्ड का दि सांग सेलेश्चियल" (1885) बड़ा प्रभावोत्पादक और लोकप्रिय सिद्ध हुआ। प्रायः संकट के समय गीता का पाठ आम बात थी। स्वतन्त्रता संग्राम से जुड़े लोगों ने इस संकट में भी गीता का आश्रय लिया। युग के कुछ बड़े बुद्धिजीवियों ने अपने संघर्ष में गीता से प्रेरणा ली और इस नई परिस्थिति

में गीता ने नई व्याख्यायें प्राप्त की। इस दृष्टि से सर्वाधिक उल्लेखनीय है गीता पर तिलक, अरविन्द, विनोबा और गांधी की व्याख्यायें। गीता अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त करने के लिए बतलाई गई है, उसमें ब्रह्मज्ञान से या भक्ति से मोक्ष प्राप्ति की विधि का-निरे मोक्ष मार्ग का—विवेचन क्यों किया गया है? इस शंका पर विचारविमर्श करते हुए बाल गंगाधर तिलक ने निष्कर्ष निकाला कि गीता निवृत्ति प्रधान नहीं है। वह तो कर्म प्रधान है। इस दृष्टि-कोण से उन्होंने "श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र" की रचना की। अरविन्द के अनुसार गीता दर्शन का केन्द्र बिन्दु है—"आंतरिक आध्यात्मिक सत्य तथा मनुष्य के जीवन एवं कार्य की बाह्य वास्तविकताओं में सामंजस्य स्थापित करना। Essays on the Gita में अरविन्द ने गीता का गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत किया है। तत्त्वज्ञान का साधन योग है, निष्काम कर्म भी योग है।

विनोबा, महादेव देसाई और गांधी की गीता व्याख्यायें अन्य वर्ग किन्तु एक चिन्तन-धारा में आती हैं। तीनों में काफी एकता है। विनोबा के गीता प्रवचन का आविर्भाव 1932 में हुआ, लेकिन काफी पहले वे गीता के आधिकारिक विद्वान के रूप में प्रतिष्ठा पा चुके थे। 1929 में गीता के गुजराती अनुवाद की भूमिका लिख चुकने के बाद गांधी जी ने अपने अनुवाद को विनोबा काका कालेकर, महादेव देसाई और किशोरीलाल मशरूवाला को दिखाया था। गांधी जी का गीता पर यह ग्रन्थ हिन्दी में "अनासक्तियोग" नाम से अनूदित हो चुका है। गांधी जी कृत गीता के गुजराती अनुवाद को अंग्रेजी में अनूदित करने में महादेव देसाई ने बड़ा परिश्रम किया। इस परिश्रम के परिणाम स्वरूप वे स्वयं गीता पर एक टीका लिखने लगे। महादेव देसाई की The Gospel of Selfless Action or the Gita According to Gondhi—गांधी जी की गुजराती पुस्तक का अनुवाद एवं देसाई की लम्बी भूमिका के साथ प्रकाशित है।

गांधी के गीता भाष्य का विवेचन :

गांधी जी का गीता से प्रथम परिचय 1888-89 में एडविन आर्नल्ड के पद्यानुवाद से हुआ था। उनके जीवन पर गीता का गहरा प्रभाव पड़ा। उससे उन्होंने ज्ञान और भक्ति की प्रेरणा पाई, किन्तु उनसे भी अधिक उन्हें निष्काम कर्म की महिमा का पता। अपने जीवन में वह बार-बार इस बात पर जोर देते रहे कि कर्म करो, पर उसके फल की इच्छा रखकर नहीं। वह लिखते हैं, "परिणाम की चिन्ता करने वाले की स्थिति विषयांध की सी हो जाती है और अन्त में वह विषयी की भांति सारासार का, नीति-अनीति का विवेक छोड़ देता है और फल प्राप्त करने के लिए हर किसी साधन से काम लेता है और उसे धर्म मानता है।"

गांधी जी अहिंसावादी थे। इसलिए वे इस बात को किसी तरह भी स्वीकार नहीं कर सकते थे कि गीता का प्रयोजन अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार करना था। अतएव गीता की पृष्ठभूमि की प्रतीकात्मक व्याख्या करना उनके लिए आवश्यक था। वे लिखते हैं "सन् 1888-89 में जब गीता का प्रथम दर्शन हुआ तभी मुझे ऐसा लगा कि यह ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है, वरन् इसमें भौतिक युद्ध के वर्णन के बहाने प्रत्येक मनुष्य के हृदय के भीतर निरंतर

होते रहने वाले द्वन्द्व युद्ध का ही वर्णन है। मानुषी योद्धाओं की रचना हृदयंगत युद्ध को रोचक बनाने के लिए गढ़ी कल्पना हैं। इस दृष्टि से कृष्ण और अर्जुन, जिनका संवाद रूप गीता है, भी प्रतीकात्मक होने चाहिये। गांधी ऐसा ही मानते हैं। गीता के अन्तिम श्लोक —

यत्र योगेश्वर: कृष्ण: यत्र पार्थो धनुर्धर:
तत्र श्रीर्विजयो भूतिश्रवा भीतिर्मतिर्मम ॥ 18/72

पर टिप्पणी करते हुए गांधी जी कहते हैं—"योगेश्वर कृष्ण से तात्पर्य है अनुभव सिद्ध ज्ञान और अर्जुन से अभिप्राय है तदनुसारिणी क्रिया"।

गांधी जी के विचार से जैसे आत्मदर्शन सब धर्मग्रन्थों का विषय है, वैसे ही गीता का भी है, पर गीताकार ने इस विषय का प्रतिपादन करने के लिए गीता नहीं रची, वरन् आत्मार्थी को आत्मदर्शन का अद्वितीय उपाय बतलाना गीता का आशय है। यह अद्वितीय उपाय है "कर्मफल त्याग।" पर निष्कामता, कर्मफल त्याग कहने भर से नहीं हो जाता। यह ज्ञानशक्ति पैदा करने के लिए ज्ञान चाहिये और बिना भक्ति का ज्ञान हानिकर है। कर्म मात्र का त्याग गीता के संन्यास को भाता ही नहीं। गांधी जी सत्य और अहिंसा को कर्मफल त्याग के लिए अनिवार्य मानते हैं। उनका स्पष्ट कथन हैं "गीताकार की भाषा के अक्षरों से यह बात भले ही निकलती हो कि सम्पूर्णफल त्यागी द्वारा भौतिक युद्ध हो सकता है, परन्तु गीता की शिक्षा को पूर्णरूप से अमल में लाने का 40 वर्ष तक सतत् प्रयत्न करने पर मुझे नम्रतापूर्वक ऐसा जान पड़ा है कि सत्य-अहिंसा का पूर्ण रूप से पालन किये बिना संपूर्ण कर्मफल त्याग मनुष्य के लिए असम्भव है।"

गांधी जी का गीता भाष्य उनकी विद्वता, चिन्तन एवं नवीन उद्भावनाओं से मंडित है किन्तु उसकी सबसे बड़ी विशेषता है गीता की शिक्षाओं को अनुभव की कसौटी पर कसा जाना। गांधी जी इस बात को स्वयं रेखांकित करते हैं—"इस अभिलाषा में दूसरे गुजराती अनुवादों की अवहेलना नहीं है। उन सबका स्थान भले ही हो पर उनके पीछे अनेक अनुवादकों का आचार रूपी अनुभव का दावा हो, ऐसा मेरी जानकारी में नहीं है। इस अनुवाद के पीछे अड़तीस वर्ष के आचार के प्रयत्न का दावा है।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि किस प्रकार विभिन्न विद्वान गीता का अलग-अलग तरह से भाष्य करते हैं। तुलनात्मक अध्ययन करके यह देखना आवश्यक है कि गीता के मूल श्लोकों के साथ किसने कितना न्याय किया है।

यह प्रश्न हमें गीता का मूल पाठ स्थिर करने के लिए बाध्य करता है। इस समय गीता का आलोचनात्मक संस्करण (भीष्मपर्व के पूना संस्करण के अन्तर्गत) उपलब्ध है। फिर भी मूल पाठ स्थिर करने की दिशा में आगे शोध हो सकता है।

ऊपर गीता पर हुई कुछ टीकाओं का उल्लेख किया गया है। गीता की और टीकाओं की भी खोज होनी चाहिये। अर्जुनमिश्र और देवबोध ने भीष्मपर्व पर टीकायें लिखी हैं पर गीता पर उनकी टीकायें प्राप्त नहीं है।

बीसवीं शताब्दी में अनेक टीकायें उन लोगों द्वारा लिखी गई हैं जो स्वतन्त्रता संग्राम में दत्तचित्त थे। उन पर गीता का प्रभाव तथा उनकी राजनैतिक एवं मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का उनके गीता भाष्यों पर प्रभाव गंभीर अध्यअन का विषय है।

गांधी जी के गीता भाष्य का समुचित मूल्यांकन का कार्य तो और भी जटिल है। गांधी जी के पूर्व के गीता भाष्यों से उनका भाष्य कितना प्रभावित और कितना भिन्न है यह ज्ञान सूक्ष्म अध्ययन से ही सम्भव है।

गांधी जी की नवीन व्याख्याओं को उनके व्यक्तिगत जीवन की पृष्ठभूमि में ही ठीक से समझा जा सकेगा क्योंकि वे अपने दीर्घकालीन आचार सम्बन्धी अनुभवों के आधार पर गीता की व्याख्या करने का दावा करते हैं। इसके लिए गांधी युग एवं गांधी साहित्य का अध्ययन अपेक्षित है। ◻

आधी दुनिया की अवधारणा और 'निराला'

□ प्रद्युमन दास वैष्णव

पं० सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला" का जन्म बसंत पंचमी के दिन सन् 1896 में बंगाल की शस्यश्यामला धरित्री महिषादल में हुआ था। वे आधुनिक हिन्दी साहित्य के कर्णधारों में अग्रगण्य माने जाते हैं। विद्रोही एवं क्रांतिकारी की प्रवृत्ति वाले प० सूर्यकांत का व्यक्तित्व भी निराला था। इसी निराले व्यक्तित्व ने उन्हें निराला उपनाम से विभूषित किया। अपनी विद्रोही और क्रांतिकारी प्रवृत्ति के कारण निराला ने अपने साहित्य में जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डालते हुए सामाजिक विद्रूपताओं, रूढ़ियों एवं परम्पराओं पर कठोर प्रहार किया। विशेषकर नारी जीवन की विसंगतियों पर उन्होंने अपने साहित्य में जो प्रकाश डाला है उससे नारी शोषण एवं अन्याय की आदिकालीन परम्परा का परिचय मिलता है। नारी का चित्रण संसार के समस्त साहित्य में अनादिकाल से होता चला आया है। हिन्दी साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। हिंदी के आरम्भिक काल में नारी का बाह्य रूप वर्णन ही प्रधान विषय बना रहा। वहां पर अनेक आंतरिक कलहों का कारण बनी, संत काव्य में उससे घृणा की गई। भक्तिकाल में उसके प्रति सहानुभूति तो रही परन्तु भक्तों के आराध्य के सम्मुख अंततः उपेक्षित ही रहना पड़ा। यदि उसे यत्किंचित महत्त्व मिला भी, तो प्रियतम की चिर विरहिणी नायिका के रूप में ही। समाज में उसकी स्थिति दीन ही रही। समाज में उसकी दयनीय हीनावस्था को देखकर भक्त प्रवर तुलसी को भी कहना पड़ा कि—

"कत विधि सुनी नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुं सुख नहीं ॥"

रीतिकाल में नारी को सबसे महत्त्वपूर्ण पद दिया गया परन्तु उस पद ने उसके मातृ रूप को लांछित एवं अपमानित कर उसे पुरुष की भोग्या मात्र बना दिया। इस काल में नारी का सर्वाधिक विविध रूपों में वर्णन किया गया यह सत्य है किन्तु, उससे भी विराट सत्य यह भी है कि यदि ऐसा वर्णन किया गया होता, तो नारी के गौरव की कहीं अधिक रक्षा हुई

होती। द्विवेदी युग में आकर नारी के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन आया किन्तु उसमें भी भक्ति साहित्य सदृश उसके प्रति दया की भावना का ही प्राधान्य रहा। राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त जी ने मात्र दो पंक्तियां कह कर नारी की सामाजिक स्थिति एवं उसकी दीन दशा की पूर्ण अनुभूति करा दी कि "अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी आंचल में है दूध और आंखों में पानी।" किन्तु इसके विपरीत छायावाद की वैचारिक गोद में आकर नारी अति माननीय सृष्टि बन गई। छायावाद के अग्रदूत 'निराला' की दृष्टि में नारी केवल रूप की छवि नहीं बल्कि सहचरी, मां और प्राण भी थी। यथार्थतः निराला की दृष्टि में नारी भावुकता प्रधान और अतीन्द्रिय परिभाषित हुई।

महाप्राण निराला ने नारी के सौंदर्य का चित्रण अवश्य किया, परन्तु उन्होंने जहां भी नारी का चित्रण किया है, वहां सामाजिक पृष्ठभूमि का ही अनुसरण किया है और उनके काव्य में नारी सर्वत्र मनुष्य के लिए या तो प्रेरक शक्ति बनकर आई है यथा राम की शक्ति पूजा में, तुलसी दास में, अथवा निराला ने उसकी दीनावस्था का वर्णन कर उसके प्रति समाज की सहानुभूति जाग्रत की है। यथा 'विधवा' में उन्होंने भारत की अन्तर्वेदना को इन हृदयस्पर्शी पंक्तियों में व्यक्त करते हुए उजागर किया है कि—"वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी, वह दीपशिखा सी शांत भाव में लीन, वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी, वह टूटे तरू की घुटी लता सी दीन, दलित भारत की विधवा है।" निराला प्रत्युत यह जानते थे कि इस विधवा की पीड़ा आकाश में लुप्त हो जाएगी। इस संसार के पास उसके त्रस्त चितवन का कोई उपचार नहीं है इसलिए उन्होंने यह भी कह दिया कि—'दुख रूखे सूखे अधर त्रस्त चितवन को, वह दुनिया की नजरों से दूर बचाकर, रोती है अस्फुट स्वर में, दुःख सुनता है आकाश धीर निश्चल समीर, सरिता की वे लहरें भी ठहर-ठहर कर, कौन उसको धीरज दे सके, दुःख का भार कौन ले सके।" और इस 'विधवा' की सहानुभूति में कवि विधाता की ही भर्त्सना कर डालता है। "देव! अत्याचार कैसा घोर कठोर है।" नारी समाज का पीड़ित अंग है, इसलिए कवि की उसके प्रति सहज सहानुभूति रही है।

इसी तरह 'बहू' कविता में कवि ने नारी का अत्यन्त मनोरम चित्र खींचा है। इसमें पति परायण भारतीय नारी का सुन्दर रूप एवं वैशिष्ट्य के दर्शन होते हैं—यथा "मन-मोहिनी है; मनोरमा है, जलती बढ़कर मय जीवन की यह एक शमां है।" चूंकि वह भारतीय नारी है इसलिए निराला उसके सबंध में कहते है—"उसमें कोई चाह नहीं है, विषय-वासना तुच्छ, उसे कोई परवाह नहीं है।' उसकी साधना तो "केवल निज सरोज-मुख पति को ताकना।" मात्र ही है, उसकी जीवन की सबसे बड़ी साध भी यही है कि "रहे देखते प्रिय को उसके नेत्र निमेष-विहीन, मधुर भाव की इस पूजा में ही रहती वह लीन।" भारतीय नारी के प्रेम की एकनिष्ठता का वर्णन करते हुए निराला जी ने लिखा है—"यौवन उपवन का पति बसन्त, है वही प्रेम उसका अनन्त, है वही प्रेम का एक अन्त, खुलकर अति प्रिय नीरव भाषा ठण्डी उस चितवन से, क्या जाने क्या कह जाती है अपने जीवनधन से।" भारतीय वधू का यह रूप हिन्दी साहित्य में अपने सौंदर्य, भाव एवं निर्मल पावनता में अद्वितीय एवं अनुपमेय है।

अपनी एक अन्य रचना 'गीतिका' के गीतों में भी निराला जी ने नारी के शरीर की ओर कम किन्तु हृदय, मन एवं आत्मा के सौंदर्य की ओर अधिक दृष्टि दी है। प्रकृति को

माध्यम बनाकर नारी सौंदर्य का वर्णन करते हुए निराला जी कहते हैं—'खुले केश अशेष, शोभा भर रहे, पृष्ठ ग्रीवा बाहु उर पर सर रहे।" इसी प्रकार सांध्यकालीन प्रकृति का नारी रूप में चित्रण करते हुए उन्होंने कहा है—"मेघमय आसमान से उतर रही है, वह संध्या सुन्दरी परी सी, धीरे-धीरे-धीरे, विमिरांचल में चंचलता का नहीं आभास, मधुर-मधुर हैं दोनों; उसके अधर, किन्तु जरा गम्भीर ; नहीं है, उसमें हास-विलास।"

व्यक्तिगत भावनाओं को, जिन्हें निराला कल्पना लोक में ही देखा करते थे, यथार्थ रूप में उन्होंने 'सरोज-समृति', 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' में उभारा है। इसमें नारी के स्वस्थ, उज्ज्वल रूप का चित्रण तो हुआ ही है. उनकी भावनाएं भी नारी के प्रति प्रखर मुखर अनुभूत हुई हैं। 'सरोज-स्मृति' में पिता के अनुरूप उसका पालन न कर पाने से उत्पन्न पीड़ा की वेदना असह्य हो जाने पर वे बोल पड़ते हैं कि—"अस्तु मैं उपार्जन को अक्षम, कर सका नहीं पोषण उत्तम। कन्ये, मैं पिता अनर्थक था।" वस्तुत: 'सरोज स्मृति' निराला की सकरुणता की जीवन्त अभिव्यक्ति है। निराला ने नारी के प्रबोधनकारक रूप को भी अत्यन्त उज्ज्वल और प्राणवन्त रूप में चित्रित किया है एवं कहा कि—देखा शारदा, नील वसना, है सम्मुख स्वयं सृष्टि रसना।"

महाकवि निराला के खंडकाव्य 'तुलसीदास' में नारी का ओजस्वी रूप भी देखने को मिलता है। तुलसीदास अपनी प्रिया के प्रेम में मोहित होकर अपनी ससुराल तक जा पहुंचते हैं और हास्य के पात्र बन जाते हैं, अपने पति के इस अपमान से आहत आकुल रत्नावली अपने पति को धिक्कारते हुए कहती है—"धिक् आये तुम अनाहूत, धो दिया श्रेष्ठ कुल धर्मपूत, राम के नहीं काम के सुत कहाये। एवं पत्नी का यही धिक्कार उनके लिये संजीवनी बन जाता है। इसी प्रकार "तोड़ती पत्थर" कविता में उन्होंने दीन हीन कृशकाय मजदूर महिला का मार्मिक चित्रण करते हुए उसके प्रति सवेदना एवं सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा है कि—"वह तोड़ती पत्थर, देखा, उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर, नहीं छायादार पेड़ वह. जिसके तले बैठी हुई स्वीकार, नतनयन प्रिय कर्मरतमन, गुरु हथौड़ा हाथ, करती बार-बार प्रहार।" वस्तुत: इस कविता में निराला जी की शोषितों के प्रति अपार सहानुभूति फूट पड़ी है। इसके अतिरिक्त निराला जी ने अपने साहित्य में नारी के मातृरूप का भी चित्रण किया है। उनका यह मानना था कि भारत का कल्याण तभी संभव है जब यह मातृशक्ति यहां के निवासियों के रूप में अवतरित होगी।

इस प्रकार निराला के काव्य में हमें नारी के विविध रूपों के दर्शन होते हैं एवं ये सारे रूप मंगलमय और वासना से रहित हैं। कहीं वह सुन्दरी प्रेयसी है, जो जीवन पथ पर अग्रसरित होने की प्रेरणा देती है, कहीं वह अवगुंठिता पतिव्रता वधू बनकर दीख पड़ती है जिसका सौम्य रूप सबका मन मोह लेता है। कहीं भारतीय विधवा है, जो सबकी करूणा का पात्र बनकर तपस्विनी सी प्रतीत होती है तथा कहीं मातृशक्ति है जो जिससे जीवन को जीने के निमित्त अपार शक्ति एवं प्रेरणा मिलती है। इस प्रकार निराला साहित्य में नारी भोग्या नहीं वरन स्नेहा और पूजिता बन कर उभरी है। इसमें नारी को सही रूप में अर्द्धांगिनी, बहन, मां आदि विभिन्न पदों पर सार्थक एवं समर्थ रूप से विभूषित किया है। यही इनके साहित्य का वैशिष्ट्य है एवं नारी जगत के प्रति इनके पवित्र दृष्टिकोण की विशेषता है।

□

शरत् साहित्य की आधी दुनिया

□ लालिमा धर चक्रवर्ती

सम्पूर्ण शरत् साहित्य में रसात्मकता और भावों की अभिव्यक्ति का विलक्षण मेल है। रसात्मकता को ही यदि लें तो नारी जीवन की करुण रसधारा का अजस्र प्रवाह उनके लेखन में सर्वत्र व्याप्त मिलता है। प्रवाह जो नारी जीवन की विवशताओं से उत्पन्न पीड़ाओं से निःसृत है। उनकी रचनाओं में समाज और परम्परा द्वारा निर्मित नारी के उत्पीड़न का इतिहास संचित है।

अब दूसरी बात भावाभिव्यक्ति की है। नारी मन के विश्लेषण के अद्भुत स्रष्टा शरत् चन्द्र को यदि मनोवैज्ञानिक कहा जाये तो अधिक संगत होगा।

उनके नारी पात्रों के हृदय में उभरती-घुमड़ती पीड़ा, मानों शरत के अपने मन पर बादल सी घिर आती थी। उस पीड़ा की वीणा पर स्नेह, प्रेम, प्रणय करुणा का कोमल राग झंकृत करना शरत् जैसे शिल्पी का ही काम था।

जीवन में प्रेम के स्थायित्व की कामना स्वयं ही यह सिद्ध करती है कि प्रेम के तन्तु बड़े ही कोमल होते हैं। इसी कोमलता के कुशल चितेरे शरत् चन्द्र अपने जीवन में जिन नारियों के सम्पर्क में रहे, उन्होंने वहां प्रेम और वेदना का अद्भुत संयोग देखा।

शरत् चन्द्र की मां भुवनमोहिनी देवी अपने निठल्ले पति के साथ अपनी गृहस्थी को चलाती थी। शरत् के पिता प्रकृति के पुजारी थे, अर्थात् अपने ही तरह के एक अनूठे कलाकार। कमाने की चिन्ता उन्हें कतई नहीं थीं, किन्तु खाने के रसिक और तम्बाकू पीने के शौकीन। अपने इस तरह साधु स्वभाव पति को शरत की मां जी-जान से प्यार करती थी। जब अपने घर में पति तथा बच्चों की ज़रूरत की सभी चीज़ें जुटाना दुष्कर हो गया तो उन्होंने भागलपुर में अपने पिता के घर आश्रय लिया। बालक शरत चन्द्र को ननिहाल में

आकर मां का एक नया रूप देखने तथा समझने को मिला। नाना और उनके भाइयों का परिवार बहुत बड़ा था। शरत की मां ने इस गृहस्थी के काम का पूरा बोझ अपने सिर ले लिया। हर काम के लिए घर में मां की पुकार होने लगी। शरत ने संवेदनशील नारी के प्रति करुणा की पहली झलक उन्हीं दिनों पहली बार देखी। मां की बेबसी, घुटन तथा अनरोयी आखों ने शरत को सहज ही सारी व्यथा कथा से परिचित करा दिया। इस मां से आगे चलकर अपने उपन्यासों में अपने नारी पात्रों में प्रेमिका, पत्नी तथा बहिन आदि के कई रूपों में नारी का चित्रण किया।

पहले इनके एक प्रसिद्ध उपन्यास श्रीकांत की अन्नदा दीदी की बात करें। अन्नदा भली-भांति इस सच्चाई को जानती है कि उसका सपेरा पति 'शाह जी' ही उसके पिता तथा विधवा बड़ी बहन की मृत्यु का कारण है, लेकिन फिर भी कई वर्ष गुजर जाने के बाद उसका पति जब एक मुसलमान सपेरे के रूप में आ जाता है। तो वह उसके सब साथ कुछ छोड़कर चली जाती है। सपेरा शाह जी के पास आने वाले श्रीकांत तथा इन्द्रनाथ के पूछने पर—"दीदी, तुम माथे पर सिंदूर देती हो, पूजापाठ भी करती हो, फिर सपेरे शाह जी आपके पति कैसे हो गये?" अन्नदा का उत्तर इतना ही था—जो पति का धर्म सो स्त्री का धर्म होता है। आत्म-समर्पण करके ही नारी अपने असली स्थान को पा सकती है। इस उपन्यास के पूरे कथानक में आगे चलकर अन्नदा का कहीं कोई जिक्र नहीं है, परन्तु इस चरित्र की छोटी सी झलक पाठक के मन पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाती है कि जीवन में प्रेम सर्वोपरि है।

इसी उपन्यास का दूसरे नारी चरित्र राजलक्ष्मी में यही भाव झलकते हैं। शरत चन्द्र एक स्थान पर लिखते हैं—यौवन के पहले चरण में मैंने एक लड़की से प्यार किया था, वह प्यार व्यर्थ गया। लेकिन सारे जीवन के बीच वह हमेशा के लिए मेरे सामने आकर खड़ा हो गया, किन्तु जिसका कोई स्वरूप ही नहीं, उसके बारे में तुम समझ ही नहीं सकोगे।'

इसी उपन्यास का राजलक्ष्मी एक जागीरदार के यहां महफिल में पुनः मिलती हैं तो श्रीकान्त पहचान नहीं पाते कि वह वही बचपन की लड़की है जिसके साथ वह करौंदे की मालाएं बनाने का खेल-खेला करते थे। अन्नदा के साथ-साथ नारी जीवन की बेबसी और मजबूरियों को शरतचन्द्र ने बड़े निकट से देखा तथा आत्मसात किया तब कहीं जाकर वह श्रीकांत जैसा अमर उपन्यास हमें दे सके।

देवदास की पार्वती और चन्द्रमुखी एक ऐसी अनबूझ प्यास है जो जीवन के अन्त तक प्यास ही बने रहेंगे। इस संदर्भ में याद आती है कवि कीट्स की प्रसिद्ध कविता Graccian Urn—जिसमें Urn पर खुदी हुई वह तस्वीर याद आ जाती है, जिसमें प्रेमी अपनी प्रेमिका का चुम्बन लेने की कोशिश में है—किन्तु यह कोशिश अभी तक पूरी नहीं हुई। Museum में इस Urn को देखने के लिए पीढ़ियां आती जाती रहेंगी किन्तु उनकी कामना और भावना अधूरी ही रह जायेगी।

शरत चन्द्र ने हमेशा नारी को सम्मान ही दिया भले ही वह नारी, समाज की नजरों में पथभ्रष्ट क्यों न हो। शरत् से यह पूछने पर कि उनके उपन्यास 'चरित्रहीन' में कौन सी

नारी-पात्र चरित्रहीन है ? तो उनका उत्तर था 'कोई भी नहीं'। इन पात्रों की परिस्थितियां ही इसके लिए जिम्मेदार हैं। किरणमयी अपने पति के इलाज के लिए डाक्टर को रिझाने के लिए भले ही श्रृंगार करती है, पर उस साध्वी के पति प्रेम पर अंगुली नहीं उठाई जा सकती। सास द्वारा लांछित किये जाने पर भी वह प्रतिवाद नहीं करती। किरणमयी की मन ही मन में सिसकती मूक वेदना को शरत् ने ही गहरे डूबकर महसूस किया था। इसी उपन्यास की सावित्री एक बाल विधवा है तथा लड़कों के होस्टल में काम करती हैं। इसी सावित्री ने कीचड़ में रहकर भी अपनी श्वेत-कमल जैसी आत्मा को दाग नहीं लगने दिया।

शरत् चन्द्र स्वयं इस बात को मानते थे कि नारी की पवित्रता और सतीत्व देह की नहीं, आत्मा से जुड़ी हुई है। इसलिए उन्होंने नारी को कभी कलंकिनी नहीं कहा, न ही लिखा।

जीवनभर पति जीवानन्द द्वारा सताई गई, परित्यक्त षोड़शी यदि चाहती तो दवाई की थोड़ी सी मात्रा बढ़ाकर अपने सारे जीवन के अपमान का बदला ले सकती थी, परन्तु शरत् की कल्पना से जन्मी 'षोड़शी' नामक नारी द्वारा ऐसा नीच कार्य करना न मुमकिन था।

घर गृहस्थी को बचाने के लिए बिराज बहु जैसी आत्मत्यागी और नि:स्वार्थ चरित्र शरत् ने रचा वहां मूक प्रेम की दीपशिखा सी परिणीता को भी शरत्चन्द्र ने ही तराशा है।

'शेष प्रश्न' नाम के उपन्यास में कितने गहरे सत्य की अभिव्यक्ति शरत् ने की है— "दुनिया में न कोई अपना है न पराया। अपने और पराये का नाता ही तुच्छ है। फिर भी न जाने इस दुनिया के महासागर में बहता हुआ कौन पास चला आता है, और कौन दूर— कोई नहीं जानता।" नारी मुंह से निकले यह शब्द अपने में कितने सच्चाई लिए हैं, यह शरत् जैसे लेखक की ही पैनी दृष्टि थी।

इस लेखक ने तिल-तिल करके अपने आपको जलाकर नारी का पुन निर्माण किया, जो केवल बंगला-साहित्य में ही नहीं बल्कि विश्व-साहित्य में अपना एक विशेष स्थान रखता है।

शरत्चन्द्र कभी एक जगह जमकर नहीं बैठ सके। यही कारण था कि उन्हें जीवन में बहुत से मान-अपमान सहन करने पड़े। कभी पतितालय में, कभी जुआ, शराब, गांजे के अड्डों पर उनकी महफिलें जमती रहीं। परन्तु वह यह महफिलों में रमें नहीं। वहां के रंग ढंग और दुर्दशा को देखकर वापिस आ गये और अपनी लेखनी से इनकी सारी कथाएं विश्व को सुनाने में लगे रहे।

ऐसे ही थे नारी के प्रति करुणा का उद्वेलन रखने वाले 'शरत्' और ऐसी ही थी उनके साहित्य की आधी दुनिया। □

राजकमल चौधरी और 'मुक्ति प्रसंग'

□ डा॰ ओमप्रकाश नारायण द्विवेदी

"मुक्तिप्रसंग" (1966) स्वर्गीय राजकमल चौधरी की अन्तिम महत्वपूर्ण लंबी कविता है। जिस समम इस कविता की रचना हुई, वह समय कविता के नामों के शोर में जकड़ा हुआ था जिसमें सर्वाधिक महत्वपूर्व नाम अकविता का है। निश्चय ही राजकमल की यह कविता सातवें दशक की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह कहते समय हमें यह भी याद है कि 'अंधेरे में' जैसे क्लासिक लम्बी कविता की सर्जना 1964 में मुक्तिबोध कर चुके थे और दिनकर की 'परशुराम की प्रतीक्षा' 1962 में प्रकाशित हो चुकी थी जो सातवें दशक के माहौल से अप्रभावित है। इसके अलावा त्रिलोचन, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल आदि, मुक्तिबोध और दिनकर जैसे पुराने कवि भी, इस दौर में लिखते रहे हैं. जो सातवें दशक के प्रभाव से अछूते है। इन कवियों को अगर छोड़ दिया जाए तो सातवें दशक में लिखने वाले कवियों में राजकमल चौधरी के समान कवि दूसरा नहीं है जो उस दशक की आवाज़ को अपनी रचना में सशक्त ढंग से ईमानदारीपूर्वक व्यक्त करता हो। सन् 1958 में अपने कविता-संग्रह "स्वरगंधा' के प्रकाशन के साथ राजकमल ने कविता लिखना शुरू किया और 1967 में मृत्यु होने के पहले 1966 में अपनी अन्तिम लंबी कविता "मुक्तिप्रसंग" की रचना की। अपनी रचना मुक्तिप्रसंग के माध्यम से सातवें दशक के तमाम कवि और उनकी कविताओं की भीड़ में अपना विशिष्ट पहचान बनाते हुए सातवें दशक पर छा जाना राजकमल जैसे कवि के लिए ही संभव था। पहले से लिखते हुए सातवें दशक के माहौल से अप्रभावित रचना बड़ी बात हो सकती है, इससे इन्कार नहीं है। "मुक्तिप्रसंग" की अहमियत इस लक्ष्य में है कि अपने समय की उपज होते हुए वह अपने समय की तमाम कविताओं को पीछे छोड़ जाती है।

कोई भी कृति यदि वह रचनात्मक कृति है तो अपने समय की आवाज़ को ज़रूर ही किसी न किसी रूप में व्यक्त करेगी और यदि वह ऐसा नहीं करती है तो समझ लेना चाहिए कि या तो रचनाकार गूंगा है या पाठक बहरा। समय की सम्पूर्ण आवाज़ को एक ही कृति में सुनने की आकांक्षा रखना संभव नहीं है। पर देखने की बात यह है कि कृति में से उभर-कर जो बात हमें सुनाई पड़ रही है वह अपने युग की सचाई के साथ कितना मेल खाती है। आज के युग का सबसे बड़ा सत्य यह है कि समाज में राजनीति का वर्चस्व है और वही सारी चीज़ों को निर्धारित भी कर रहा है। अतएव "मुक्तिप्रसंग" को यदि राजनीतिक संदर्भ में देखने और परखने का प्रयास किया जाय तो काफी हद तक इस कविता को समझने में मदद मिलेगी। यद्यपि कि समग्र मूल्यांकन इस कविता का इस दृष्टि से संभव नहीं है, सिर्फ एक पहलू ही समझा जा सकता है। बावजूद इस सीमा के आज इस कविता पर विचार करने की प्रासंगिकता मैं इसी अर्थ में समझ रहा हूं। इसीलिए "मुक्तिप्रसंग" की चिंतन प्रक्रिया और रचना-प्रक्रिया को मैं जानबूझकर छोड़ रहा हूं, जो कि समग्र मूल्यांकन के लिए यह ज़रूरी है।

"मुक्तिप्रसंग" (1966) कविता में "मुक्ति" शब्द स्वयं ही अपना राजनीतिक अर्थ रखता है। यह सच है कि मुक्ति के अन्य भी परंपरागत अर्थ होते हैं और उन अर्थों में भी कविता में मुक्ति-प्रयास की चर्चा की गयी है। मिथकीय प्रयोगों के ज़रिये भी राजकमल चौधरी कविता में एक मुक्ति का भी तांत्रिक अनुष्ठान की रचना करता है। मुक्ति का वामा-चारी मार्ग ही उन्हें इष्ट है। मदिरा, मास, मैथुन की महा-मुद्राओं का प्रयोग कर कवि ने अपनी तांत्रिक साधना में उग्रतारा का मिथकीय प्रयोग किया है। यही उग्रतारा प्रकृति का प्रतीक होकर शाश्वत नारी का प्रतीक बन जाती है और कवि स्वयं शिव-शाश्वत पुरुष का। कवि स्वयं इस उग्रतारा का उपासक भी है और उपास्य भी। वह उग्रतारा से जन्म लेता है, उसके साथ रमण करता है और उससे मुक्ति भी चाहता है। "मुक्तिप्रसंग" के संदर्भ राज-कमल के अनुसार मुक्ति का अर्थ क्या है, यह जानना भी असंगत न होगा। राजकमल के अनुसार "कविता लिखने के लिए समाजबोध एवं शरीरबोध की जितनी आवश्यकता है, कविता के धर्म (मैं मर्म की बात नहीं कह रहा हू) को समझ लेना, उससे ज्यादा आवश्यक है। मुक्ति प्रयास ही कविता का धर्म है।—मैंने कविता को कविता भंगिमाओं के नहीं, शरीर सीमाओं से मुक्ति का प्रयास मान लिया है। हमारे शरीर में संस्कार, समाज, अनुभव और भविष्य —इन सभी वस्तुओं की उपस्थिति है। इन सभी वस्तुओं से हम मुक्ति की प्रार्थना करते हैं। "मुक्तिप्रसंग" अपनी दूसरी कविता पुस्तक में कविता के लिए मैंने यही प्रार्थना उपलब्ध की। कविता मेरे व्यक्ति को अपनी शरीर-सीमाओं से मुक्त करती है अथवा इस मुक्ति में सहायक होती है।" कवि की इस धारणा के पीछे उसके जीवन के अन्तर्द्वन्द्व, मृत्यु और मुक्ति की गहरी टकराहट से उत्पन्न द्वन्द्व-चेतना का महत्वपूर्ण योगदान रहा है जो उसे काफी हद तक विनम्र की स्थिति में पहुंचा देती है। राजकमल के शब्दों में ही उस उलझन को समझना अप्रासंगिक न होगा। "वैसे, बहुत मानसिक उलझनों और दार्शनिक विक्षिप्तताओं में पड़ गया हूं। मानव जीवन का उद्देश्य क्या है? सौन्दर्यबोध की भावना का मूल स्रोत कहां है? भौतिक शास्त्र के सूत्रों में अन्तर्निहित महारूप के दर्शन कैसे कर सकूंगा, समझ में नहीं आता। गीता का निष्काम कर्मयोग अथवा मार्क्स का डायलैक्टिल मैटेरियलिज्म कुछ

सहायता नहीं कर पाते। योगवशिष्ठ बेकार लगता है। मेरी आत्मा का गार्गी के तर्कों का समीचीन उत्तर मेरे दिमाग का याज्ञवल्क्य नहीं दे पाता और मैं विफल हो जाता हूं।[2] हो सकता है इन्हीं प्रश्नों की जिज्ञासा राजकमल को अघोरों-कापालिकों के वामाचार और मुक्ति-कामी तांत्रिक अनुष्ठान की ओर ले गयी हो। पर इस सबके बावजूद अपनी कविता और मृत्यु से पूर्व राजकमल चौधरी इस धरती और मानव-जाति के उद्धार और मुक्ति की जो कामना करता है उससे स्पष्ट है कि मुक्ति शब्द की राजनीतिक अवधारणा ही पूरी कविता पर "हावी" है।

वस्तुत: "मुक्तिप्रसंग" अपने विशिष्ट मन:स्थिति एवं संरचनात्मक व्यवहार के बावजूद पूर्णत: राजनीतिक कविता है। मुक्तिप्रसंग का कवि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की ही संतान है पर वैध नहीं अवैध संतान। जिस संकटग्रस्त विभीषिका में कवि फंसा है, वह सब कुछ राजनीति का ही परिणाम, प्रभाव है। कवि द्वारा स्वाधीन भारतीय राजनीति के दुष्प्रभावों को भोगते हुए इस राजनीति के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की पहचान का प्रयास भी पूरी तरह राजनीतिक है। "मुक्तिप्रसंग" में रोगाबद्ध कवि का मानसिक चिन्तन अपस्कार (Hysteria) और निद्रा के बार-बार पड़ने वाले दौरों से ग्रस्त है।[3] "यह चिन्तन प्रक्रिया चेतन-अवचेतन के साथ न्यूरोसिस के सन्दर्भो के घुली-मिली हुई है. जहां, कई-कई संदर्भ अपनी तार्किक स्थिति, सीमा, संबंध खोकर गडमड रूप में संक्रमित हो गये हैं। सामाजिक संबंध असामाजिक अतियों में, राजनीतिक समझ सर्व-राजनीतिक विरोधी अराजक विचार में, नगरीय संदर्भ और रुग्ण दैहिक-आवयविक संदर्भ परस्पर गुंथ गये है।"[4] कवि" अपनी अतीन्द्रिय चेतना की अन्तहीन यात्रा-प्रक्रिया" में डूबा हुआ, तमाम तरह की सार्थक निरर्थक वक्तव्यों, बड़बड़ाहटों के साथ आपरेशन टेबुल पर पड़ा हुआ, अति-मूर्च्छा और उन्माद की दशाओं को भोगता हुआ जब मानव के "मुक्ति-प्रसंग" की रचना करता है तो उसका प्रयास अजीब से अराजक विधान की सृष्टि करता है। इस कारण इस कविता को कवि की तात्का-लिक असाध्य रोगग्रस्त स्थिति सापेक्षता में ही समझने की जरूरत है राजनीतिक अंधकार से कवि को मुक्ति की आकांक्षा यद्यपि अपनी इकाई को बचाने के लिए है तथापि वह एक सामान्य संदेश छोड़ जाती है जिसकी रौशनी में भारत ही नहीं पूरे विश्व को अपनी जकड़ में लिए राजनीतिक अंधकार को पहचानने में मदद मिलती है। निहायत व्यक्तिवादी धरातल से रचना करने वाले कवि राजकमल की एक विशेष खूबी यह है कि उसके वास्तविक जीवन और कविता में कोई विरोध नहीं है। इसी कारण कविता में केन्द्रीय प्रतीक के रूप में उग्रतारा को रखने की कवि की स्वयं की स्वीकृति[5] के बावजूद व्यक्ति और कवि राजकमल समूची कविता के मूल में, सर्वत्र विद्यमान है। अपने द्वारा रचित केन्द्रीय प्रतीक पर खुद ही कवि का छा जाना कवि की जबरदस्त साहसिक रचनात्मकता का प्रमाण है। कुछ लोग इस साहसिक कदम को दुस्साहस के रूप में देखते हुए "मुक्तिप्रसंग" की आलोचना करते हैं जोकि संगत नहीं है।

राजनीतिक परिवेश की विसंगति व पतनशीलता के संदर्भ में मुक्ति का प्रसंग उठाकर एक विशेष प्रकार की राजनीति, "इस धरती से आदमी को हमेशा के लिए खत्म कर देने की" राजनीति को उजागर करना कवि का लक्ष्य है। यह उजागरता जिस जमीन से ("मैं क्यों कुछ नहीं कुछ नहीं") राजकमल करता है वह उसकी निहायन निजी जमीन है। जिसके चलते

कोई भी सकारात्मक निष्कर्ष निकालना कवि के लिए मुश्किल है। यह कवि की भी सीमा है साथ ही उसके युग की भी। अपनी व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के कारण राजकमल युग की सीमा को तोड़ने में असफल होकर अन्ततः अराजकवाद का शिकार हो जाता है जो वस्तुत: उलट कर रखा गया पूजीवादी दर्शन ही है। जिस पूंजीवाद-साम्राज्यवादी ("बनिए सौदागर की") राजनीति का विरोध व "मुक्तिप्रसंग" में करता है उसी का शिकार होकर आत्मघाती निष्कर्ष निकालता है जो कथमपि स्वीकार नहीं हो सकता। आज ज़रूरत इस बात की है कि इसके समीचीन कारण की जांच-पड़ताल की जाय न कि इस आधार पर "मुक्तिप्रसंग" जैसी कविता को नकारा जाये। "मुक्तिप्रसंग" के कवि की स्वाधीन भारत में ज़िन्दगी यदि एक दुर्घटनां रही तो उसकी कविता भी। कारण कवि का अकेले ही तमाम सवालों से जूझने की कोशिश करना और क्योंकि आज भारत में—

"अकेला आदमी अपराधी होता है
सवालों के जत्थों से भरा हुआ अकेला आदमी
एक दुर्घटना होता है।"[6]

कहना न होगा कि 'मुक्ति-प्रसंग" में कवि भी लम्बी प्रश्नावली से घिरा हुआ है और इस प्रश्नावली के पीछे चलती उसकी चिन्ता, उसका विक्षोभ निरंतर उसे एक तनावी स्थिति में ढकेलते रहते हैं। यह लंबी प्रश्नावली है—

"आदमी क्या प्यार करता है युद्ध क्यों परिवार-नियोजन
क्यों बर्लिन की दीवार
क्यों देशप्रेम क्यों अफीम की गोलियां क्यों चैप्लिन की फिल्में
क्यों ताशकन्द-सम्मेलन क्यों रीढ़ की हड्डियों में
गैंग्रीन
मादाम नू क्यों-क्यों दास-कैपिटल
क्यों सुकरात क्यों गांव की बौद्ध भिक्षुणियां जल मरती हैं
क्यों गार्गातुआ की कहानियां क्यों कश्मीर के लिए सेनाएं
क्यों अजन्ता
क्यों एक ही युद्ध कमर की हड्डियों में और कभी वियतनाम में
होता है क्यों तुम वह
मैं क्यों कुछ नहीं कुछ नहीं।[7]

स्वाधीन भारत में राजकमल के ये प्रश्न हैं जिसके उत्तर की उसे जरूरत है। साथ ही स्वाधीन भारत में जीते हुए अपने होने का, अपनी स्थिति का यह बोध कि—

"क्यों नहीं मेरे लिए कोई नाम कोई नदी कोई जंगल कोई चिड़िया
कोई फूल कोई सिद्धान्त
कोई दरख्त कोई राजनीतिक कोई जंगल

कोई साँप कोई गांव

कोई स्त्री कोई सड़क कोई संगीत कोई नशा कोई प्रेम कोई घृणा

कोई घर कोई आंगन कोई छांव

वापस लौट जाऊं मैं जहां एक बार फिर से अपनी यात्रा

शुरू करने के लिए

क्यों नहीं है मेरे लिए जीने में अथवा अन्ततः मर जाने में कोई कारण

कोई सत्य कोई न्याय कोई आकर्षण ।[8]

इससे बड़ी ट्रैजेडी क्या हो सकती है कवि के लिए कि वह अपने जीने और अन्ततः मर जाने तक का भी कोई सही तर्क आज़ाद भारत में नहीं खोज पाता । कौन है इसका जिम्मेवार ? इसका उत्तर भी कवि के पास है । जब वह कहता है कि "नीले कांच का फूलदान है मेरा देश" तो वह यहीं नहीं रुकता बल्कि उन ताकतों को पहचानने का प्रयास करता है जिन्होंने देश को इस कमज़ोर हालत में ला खड़ा कर दिया है जिसके कारण देश का "जन-संख्या सबसे भयानक प्रश्न है" और "लूप का इस्तेमाल करना चाहिए" इसका निदान। विडम्बना यह है कि यही भारत का वर्तमान है और यह वर्तमान ही सबके लिए मुख्य बन गया है—

"केवल वर्तमान में जीते हैं समस्त प्रजाजन
मर जाते हैं अतीत में और भविष्य में मर जाते हैं ।[9]

स्थिति इस कदर भयानक है कि—

"भीड़ जलूस लाठीचार्ज जन-आन्दोलन आम-सभाओं के श्रोता वक्ता भोक्ता
गेहूं के सिवा कोई बात नहीं कहते"[10]

भले ही—

"आदमी चन्द्रमा को बना ही डाले अपना उपनिवेश
आदमी ईश्वर शैतान धर्म नीति से स्वाधीन हो जाए क्या होता है
आदमी लिखे एब्सर्डिटी का दर्शन विधान
आदमी सुदूर दक्षिण बन जातियों में ढूंढता रहे पेड़-पौधों की समाधि
आत्मसाक्षात्कार
आदमी वर्ल्ड-बैंक से तीस करोड़ डालर ले आये"[11]

पर स्वतंत्र भारत में इसके लिए मजबूर है कि—

"आदमी खुद बिके अथवा बेच ही डाले अपनी स्त्री अपनी आंखें अपना देश[12]

ऐसी संकटग्रस्त दशा में भी स्वाधीन भारत की जनता जिसके लिए कवि "भीड़" शब्द का इस्तेमाल करता है "खाने के लिए गेहूं"

और सो जाने के लिए किसी भी गन्दे बिस्तर के सिवा कोई बात नहीं कहती
है
प्रजाजनों के शब्दकोष में नहीं रह गये हैं दूसरे शब्द दूसरे वाक्य दूसरी
चिन्ताएं नहीं रह गयी हैं।"[13]

और "मुक्तिप्रसंग" के कवि की "ट्रेजेडी" यह है कि

"किन्तु भीड़ से विच्छिन्न असंपृक्त रहकर भी भीड़ से मुक्त मैं हो नहीं
पाता हूं" [14]

क्योंकि कवि के लिए तो—

"मुक्त हो जाना कविता से पहले और मृत्यु से पहले मुक्त हो जाना
असंभव है।"[15]

देश के इस स्थिति में पहुंचने का क्रम कवि के अनुसार स्वतंत्रता की पहली रात्रि से ही शुरू हो गया था जब राजनीति की मार ने कवि को नहीं "जठराग्नि दावानल" सबको राख करके रख दिया—

"सब बुझ गये अचानक पहले पन्द्रह अगस्त की पहली रात के बाद
सब राख ही राख बच गया है पीला मवाद।"[16]

इसी कारण "केवल हवा कीड़े जखम और पनाले अधिक स्थानों पर इस देश में" कवि को दिखाई पड़ते हैं जहां शहीद स्मारक तो बने हैं परन्तु पूंजीवादी लोकतंत्र की गिरफ्त में फंसा देश अपनी भूख और प्यास मिटाने के काबिल भी नहीं बन पाया। इसी संदर्भ में कवि का कहना है कि—

"ग्यारह बजकर उनसठ मिनट पर हर रात शहीद स्मारक के नीचे
होती है
पागल काली एक मरी हुई स्त्री
उजाड़ आसमान में दोनों बांहें फैलाकर रोने के लिए
रोते हुए सो जाने के लिए पानी और अनाज के देवताओं से भीख
मांगती है।"[17]

ऐसी परिस्थिति में कवि कहता है कि—

"हंसने लगता हूं मैं लिफ्ट के नीचे
हावड़ा-ब्रिज के नीचे
महारानी विक्टोरिया का महाकाय मूर्त्ति के नीचे खड़ा होकर
मैं हंसने लगता हूं
हंसता हुआ गाने लगता हूं भारत भाग्य विधाता
जय हे जय।"[18]

स्वतंत्र भारत की यह नंगी रोने और हंसने वाली स्थितियां उसकी राजनीति की ही देन व परिणाम हैं। "मुक्तिप्रसंग" का कवि यह महसूस करता है कि यह स्थिति सिर्फ भारत की ही नहीं और भी विकासशील देश ऐसी ही स्थिति से गुज़र रहे हैं। ऐसी स्थिति में कवि इन सबके लिए जिम्मेवार अन्तर्राष्ट्रीय कारणों की पहचान का प्रयास करता है जिसके चलते—

"नई दिल्ली में और ढाका-कराची में कोई फर्क नहीं है
कोई फर्क नहीं है एक गुलाम शहर से दूसरे गुलाम शहर के गोश्त और
किताबें और धर्म प्रवचन
एक साथ बिकते हैं एक ही कीमतों में बिकते हैं
और गुलाम-शहरों का एक मात्र बच गया है लोकनायक जब
007 जेम्सबांड
चीनी अजरहे के पेट को चीरकर बाहर खींच लाएगा
हमारे देश की चौदह हज़ार पांच सौ वर्गमील पुण्यभूमि केवल वही
नायक है 007
नायिका है किसी फिलम नौटंकी हवामहल जैनेन्द्र इयान फ्लैमिंग को
वह स्त्री जो हर अध्याय में एक बार
अथवा अन्तिम अध्याय में सौ बार नंगी होती है बहुजन हिताय
और हमारे भाग्य विधाता डालर रूबल पौंड
क्षेत्रों की भिक्षाटन-यात्राओं में क्रमश: निर्लज्ज पारंगत होते जा रहे हैं साहसी

○

और रुपये के अवमूल्यन के साथ भारतीय भारतीय संस्कृति और सुन्दरता
मूल्यवृद्धि करती जा रही है अमरीका-योरप में
बलवन्त-गार्गी आम के पंजाबी पेड़ न्यूयार्क में लगा आते हैं
बीटल्स लड़के बजाते हैं लगातार
रविशंकरी सितार।"[19]

यह है अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अतिमहाशक्तियों की राजनीति जिसके चलते विकासशील देश एक नये उपनिवेशवाद के अधीन हो रहे हैं। देश में भिक्षाटन की प्रवृत्ति ही नहीं, रुपये का अवमूल्यन ही नहीं, संस्कृति का विघटन भी हो रहा है। यह सब कुछ "मुक्तिप्रसंग" के कवि को त्रस्त करता है और वह सिर्फ "देह की राजनीति" से आगे बढ़कर संकटग्रस्त विश्व को देखते हुए इसके लिए जिम्मेवार महाशक्तियों के षडयन्त्रकारी राजनीति की पहचान करता है। जो षडयन्त्रकारी राजनीति —

"नागालैण्ड में विदेशी बमों से निरीह यात्री-रेलगाड़ियां उड़ाता है
शांतिपूर्वक भेजता है कोरिया कभी क्यूबा कभी कुछ और

कभी वियतनाम कभी अल्जीरिया

कभी अपनी संस्कृति कभी अपनी मशीनें अपने टैंक जहाज़-हथियार

मूल्य-नियंत्रण के लिए कभी उड़ीसा में दुर्भिक्ष

काहिरा में शक्ति सम्मेलन युद्ध अणु-आयुध नियंत्रण के लिए

कभी दण्ड कभी साम

कभी ईसा मसीह और कभी वेश्याओं के नाम"[20]

विकासशील देशों को आक्रान्त किये हुए महाशक्तियों की राजनीति का असल स्वरूप यही है जो राजकमल की वैयक्तिक चेतना में अपने व्यापक सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों के साथ लिपटा हुआ है। देशों के सौदागर महाशक्तियां वियतनाम या विकासशील देश में कहीं भी जो बलात्कार कर रहे हैं, उन्हें तोड़ने की साज़िश रच रहे हैं, उसकी पीड़ा कवि की वैयक्तिक चेतना में गहरे स्तर पर है—

"जिसे बेडौल टुकड़े में बांटकर अलग-अलग चाहते हैं

भोग करना बनिये-सौदागर

इस दुनिया की सबसे नंगी मज़बूत औरत का नाम है वियतनाम

उत्तर वियतनाम और दक्षिण वियतनाम

उत्तर कोरिया और दक्षिण कोरिया

सफेद अफ्रीका और काला अफ्रीका

पूर्वी जर्मनी और पश्चिमी जर्मनी

पाकिस्तान और हिन्दुस्तान

सफेद अमरीका और काला अमरीका

जान्सन का अमरीका एलेन गिंस-वर्ग का अमरीका

और मलय राय चौधरी का हिन्दुस्तान

इस दुनिया की प्रत्येक मज़बूत और नंगी और दो टुकड़ों में बंटी हुई यह औरत मेरी मां मेरी बीबी मेरा देश और मेरी ज़िन्दगी"[21]

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के इस संदर्भ में "मुक्तिप्रसंग" का कवि जिन नतीजों पर पहुंचता है वह किसी भी प्रकार आशाजनक नहीं है। कवि महसूस करता है कि —

"मेरा अस्तित्व

अपनी अलौकिक नग्नता में डूब गया है

संज्ञाविहीन ज्ञानहीन

समय अब मेरे लिए केवल नीलापन शून्य है

शून्य है स्थान काल और पात्र गतिहीन आकारहीन"[22]

इस राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में कवि के लिए कोई स्वप्न देखना या कविता लिखना दु:साध्य हो गया है—

"प्रत्येक बार होता है प्रकृति के साथ निद्रामयी अचेतन समाविस्थ
प्रकृति के साथ
बर्बर पेशाची बलात्कार
जब भी मैं रचना चाहता हूं कोई स्वप्न कोई कविता"[23]

वर्तमान भारत की यह भयावह स्थिति कवि को मजबूर करती है कि वह कोई निर्णय ले—भले ही कोई उससे सहमत हो या असहमत। "अपने इस गतिहीन वर्तमान में होने के बावजूद नहीं हो पाने की विडम्बना" का यातनापूर्ण एहसास कवि को विवश करता है कि वह "अपनी इकाई बचाने के लिए" वास्तविक जीवन में और कविता में "संगठन और संस्थाओं के विरुद्ध" अर्थात् "शासनतंत्र और सेनाओं" के विरुद्ध हो जाये। कविता का यह निर्णय उसके इस विश्लेषण से जुड़ा हुआ है कि

"आदमी को तोड़ती नहीं है लोकतांत्रिक पद्धतियां केवल पेट के बल
उसे झुका देती हैं धीरे-धीरे अपाहिज
धीरे-धीरे नपुंसक बना लेने के लिए उसे शिष्ट राजभक्त देशप्रेमी नागरिक
बना लेती है"[24]

इसीलिए—

"आदमी को लोकतंत्री संसार से अलग जाना चाहिए
चले जाना चाहिए कस्साबों गांजाखोर साधुओं
भिखमंगों अफीमची रंडियों की काली और अंधी दुनियां में"[25]

कारण कि—

मसानों
अधजली लाशें नोचकर
खाते रहना श्रेयस्कर है जीवित पड़ोसियों को खा जाने से
हम लोगों को अब शामिल नहीं रहना है
इस धरती से आदमी को हमेशा के लिए खत्म कर देने की
साजिश में"[26]

कवि का यह फैसला राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीवादी राजनीति के विरोध में है जो "इस धरती से आदमी को हमेशा के लिए खत्म कर देने की साजिश में" जुटी है। सरलीकृत रूप में कवि की यह समझदारी पूंजीवादी-साम्राज्यवादी राजनीति की असलियत को उजागर कर उसका पर्दाफाश करती है। लेकिन अन्तिम परिणाम में कवि स्वयं इसी राजनीति का

शिकार हो जाता है और उसकी यह कविता एक दुर्घटना बनकर रह जाती है। कवि द्वारा अराजकतावाद का समर्थन और कुछ नहीं पूंजीवादी राजनीति का ही दूसरा पहलू है जिसे कवि नहीं समझ पाता। इसके लिए कवि जितना उत्तरदायी है उतना ही उसके समय (1966) की सीमा भी उत्तरदायी है। भारतीय राजनीति में पूंजीवादी राजनीति में वर्चस्व को देखते हुए और विकल्प की राजनीति पर छाए कुहासे को ध्यान में रखते हुए जब हम "मुक्तिप्रसंग" की प्रासंगिकता पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि अपनी भयानक कमज़ोरी और सीमा के बावजूद पूंजीवादी राजनीति को समझने में यह कविता काफी सहायक है और इसकी अहमियत तब तक बनी रहेगी जब तक पूंजीवाद के विकल्प की राजनीति का स्वरूप बना रहेगा। जिन्दगी और कविता में एकता स्थापित करने वाली इस कविता की भयानक "ट्रेजेडी" भी सबक के तौर पर हमारे सामने बहुत से सवाल छोड़ जाती है जो आज भी अनुत्तरित हैं।

संदर्भ

1. राजकमल—निवेदिता—जनवरी—1967—पृ० 3
2. राजकमल—"लहर"—राजकमल मूल्यांकन अंक, पृ० 28
3. "मुक्तिप्रसंग" के बाहर दिखाया ग्राफ।
4. डा० बलदेव वंशी,—लंबी कविताएं वैचारिक सरोकार—पृ० 72
5. राजकमल चौधरी द्वारा शंभूनाथ को 7-10-66 को लिखे एक पत्र का अंश—दर्पण—सितम्बर 1967—सम्पादक श्याम श्रेष्ठ—पृ० 16
6. लीलाधर जगूड़ी—बलदेव खटिक—उद्धृत—कहीं भी खत्म कविता नहीं होती—सम्पादक डा० नरेन्द्र मोहन पृ० 230
7. राजकमल—मुक्तिप्रसंग—उद्धृत—कहीं भी खत्म नहीं होती कविता—सम्पादक डा० नरेन्द्र मोहन—पृ० 112-113

कृति आंकलन

'फिर कभी'.........

□ मनोज शर्मा

प्रदीप मिश्र का कविता-संग्रह "फिर कभी" हाथ में है। प्रदीप मिश्र के नाम से हिन्दी
लेखक समाज अर्से से वाकिफ है। "भोर-सृजन संवाद" के सम्पादक के रूप में भी उन्होंने
एक पहचान छोड़ी है। इस काव्य-संग्रह की भूमिका में परमानंद श्रीवास्तव ने प्रदीप के
कच्चेपन को स्वीकारते हुए उसमें नए की झलक देखी है। उनके अनुसार, "प्रदीप मिश्र एक
तरह की नई हिकमत का आभास दिलाते हैं। जब काव्येतर को भी काव्यात्मक ठहराना
सिर्फ साहस नहीं होता, यह जरूरी संकल्प और नैतिक विवेक के दायरे में आता है।" इस
संकलन की कुल 42 कविताओं को तीन भागों में बांटा गया है। (1) फिर कभी बैठेंगे
फुर्सत में (2) ड्योढ़ी से क्षितिज तक (3) न ही कोई पढ़े इतिहास। हालांकि इस तरह की
बांट का कोई विशेष कारण नज़र नहीं आता है फिर भी इन अर्थों में इसे लेकर चलते हैं कि
यह बांट हुई है। इन तीनों हिस्सों के रेखाचित्र क्रमशः मुकेश बिजौले, सुरेन्द्र कुमार और
करूणानिधान के हैं।

समकालीन हिन्दी कविता को लेकर पिछले कुछ समय से परस्पर विरोधी बातें
प्रस्तुत होती रही हैं। इनमें बहुधा व्यक्तिगत रूचियां और खेमे भी अपनी भूमिका निभाते
हैं। कभी कविता में सघनता की कमी देखी जाती है तो कभी एक कविता दूसरी में घुसी
नज़र आती है हैरानी इस बात की भी होती है कि धारणा की तरह दोहराया जाता है कि
कवि अंधा अनुकरण करने लगे हैं, उनके तेवर पत्रकारिक हैं, नवीनता की कमी है, तात्का-
लिकता अधिक है व धैर्य कम, जोखिम नहीं उठाते, कविता को या तो कला की रूढ़ि तक
पहुंचा रहे हैं या विचार की रूढ़ि तक, जनपदीय चेतना का अभाव है, कविता एक नियत
फ्रेम में ही उपस्थित है, वगैरह। आज के दौर में अधिकांश अध्ययन संस्थाओं में अध्यापन

कमं अपनी आलोचना के किन मापदंडों पर आधारित हैं ? आचार्य रामचन्द्र शुक्ल व आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपरांत जैसे किसी आलोचक को वह स्थान नहीं मिला है ठीक वैसे ही अधिकांश अध्यापक छायावाद के बाद की कविता को क्या ठीक से पढ़ा भी पाए हैं ? आलोचना की यह कमी अध्यापकों के हत्थे चढ़कर यूं हो गयी कि नामवर सिंह की आलोचना पुस्तक ''कविता के नए प्रतिमान'' भी उस लिहाज से संदर्भ की किताब सिद्ध नहीं हुई है। शेष तो लोगबाग लिख ही रहे हैं। समाचार पत्रों में पुस्तकों की आलोचना छपती है जिसके कागज का दूसरे दिन ही लिफाफा बन सकता है। और पिछले दिनों के ही पत्राचार के आधार पर कह सकता हूं कि ज्ञान दा (ज्ञानरंजन) ''पहल'' में प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा से सहमत नहीं व इसीलिए ''कविता का तीसरा संसार'' नामक पुस्तिका प्रकाशित हुई है। इस परिदृश्य में विशेष यही है कि कवि भी आगे आकर समकालीन कविता पर लिख रहे हैं।

प्रदीप मिश्र के इस संकलन को पढ़ते हुए कुछ प्राथमिक सवाल मेरे सामने उभरे कि इस कवि की स्मृति क्या-क्या कहना चाहती है ? इस की तात्कालिकता क्या है ? इसके पास स्थिर चीजें किस तरह आती हैं और अस्थिर चीजें किस तरह ? यानि इसका मूर्त्तन क्या है तथा अमूर्त्तन क्या ? इसके सुन्दर, भव्य, त्रासद व खतरनाक क्या हैं ? इनके प्रति इसका रूपबंध कैसा है ?

चाहता हूं कि आत्मीयता के चलते ऐसे सीधे सवाल जवाब की भाषा में संवाद न करूं, इसीलिए इस पढ़े गए संकलन पर पहली धारणा देकर, अपने जवाब भी सांझे कर रहा हूं और समकालीन हिन्दी कविता से भी, अपने इसी तरह के पहलेपने के चलते मुखातिब हो रहा हूं।

सभी तरह की विद्रूपता व भदेस के बावजूद, किसी नएपन के प्रति एक विशेष प्रकार का आसक्ति भाव प्रदीप में है। वह बार-बार उन समाचारों, शिथिल होते लोगों, क्रूरताओं, बेचैन करने वाले माहौल और तमाम तरह की बेचारगियों में जाता है, किन्तु यह जाना जैसे आभास भर है। एक वैचारिक गंध और स्वस्थ आलोक और सहज संसार और प्रतीक के अनुरूप चाहा गया मूर्त्त संसार तथा इसकी सघन छाया कवि के पाश में पहले से मौजूद है। वह उस योद्धा की तरह लड़ता प्रतीत होता है जिसके पास एक दूसरा छोर है। इस छोर तक पहुंचने के रास्तों की, हालांकि कवि के पास कोई समाजशास्त्रीय नकेल मुखर नहीं होती फिर भी उस की सुखद की चिन्ता सन्तोष देती है। लोगों की चुप्पी की मारी देह, उसे या उसके माहौल को किस लिए तोड़ती है यह सोच ही बार-बार आलोचक को हांट करती मिलेगी।

प्रदीप में तमाम तरह की सांसारिकता के चलते हुए एक दर हकीकत वाला भाव मुखर होकर उपस्थित रहता है। इसलिए बहुत बार जहां कविता समाप्त हुई लगती है वहीं से कवि, कविता को आगे बढ़ा ले जाता है। कुछ विशेष शब्दों से प्रत्येक रचनाकार को मोह हो जाता है। बड़े कवि बार-बार इस शब्द-संस्कार को तोड़ते तथा बार-बार इसे रचते हैं। प्रदीप में प्रकृति, व्योम-नक्षत्र, बादल, चिड़िया, इतिहास या फिर दूर बैठे बूढ़े इत्यादि को बार-बार पाकर लगता है कि अपने इर्द-गिर्द से उसे मोह है किन्तु इसी बीच वह संवेदना की कुछ निजी ध्वनियों को भी स्थापित करना चाहता है। कह दूं कि जिस

ध्वनि संसार को उसने रचना चाहा है उसका आभास अधिकांश कविताओं के पैरों की
शुरूआत व अन्त में उभरता है। बहुत बार यहां एक जिद भी मिलती है। जैसे उसकी एक
कविता "जिन्दा रहने के लिए" का विन्यास लें तो इसमें जीवन की जरूरतें तथा रोमांस की
अनिवार्यता यकसां उपस्थित हैं। इसमें, जीवित रहने के लिए प्रेमिका रोटी की तरह ही
जरूरी है। कविता में एक पद जहां समाप्त होता है वहीं एक पठनीय आग्रह उपस्थित होता
है। खुल कर कहा जाए तो संवाद/वाचन व उद्बोधन शैली के बहुत पास एक ऐसा ध्वनि-
संसार है जहां कविता बाकायदा सुनाई जाने वाली बनती है। हालांकि ऐसी ही स्थिति
संग्रह की पहली कविता "फिर कभी" में भी उभरती है किन्तु शब्दों के चयन के आधार
पर एक उद्बोधन, "काम पर निकले हुए बच्चे" कविता में अपने पूरे पैनेपन सहित
उपस्थित है।

"काम पर निकलने के बाद / बच्चे हो जाते हैं / ज्वालामुखियों की तरह चंट / भूकंप
की तरह उजड्ड/अनाज के समानुपाती/और पेड़ों की तरह शालीन/सिर्फ/काम पर निकले
हुए बच्चों के पास/बचे हैं कुछ सपने/नए-नए मुहावरे गढ़ने की क्षमता/और इतनी मज़बूती/
कि जंगल को/तब्दील कर दें हरे-हरे मकान।

इस संकलन की एक बेहतरीन कविता "मां" है जिसमें क्राफ्ट व विचार का अद्भुत
सुमेल है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर "सम्बन्ध और विश्वयुद्ध" सरीखी कविताएं कवि को और
लिखनी चाहिए। अयोध्या कांड पर पिछले कुछ वर्षों में बहुत से कवियों ने लिखा है। इनमें
"विनोददास" की श्रृंखला कविता महत्वपूर्ण थी। प्रदीप ने भी इस विषय को पूरी चिन्ता
सहित उठाया है। इस संकलन के दूसरे भाग में कवि जहां मौजूदा समय व प्रकृति के प्रति
चैतन्य है वहीं अन्तिम खंड की पहली ही कविता में उसके सामने विनाश की चिन्ताएं हैं।
बहुत बार लगता है कि कवि एक फिक्स करने वाली भाषा को पकड़ रहा है कि जैसे कैमरे
से कोई दृश्य जड़ किया गया हो।

किसी कहानी की मानिंद नाम बहुत कम इस संग्रह की कविताओं में आए हैं।
"गांव" शीर्षक कविता में उसने इस का भी परिचय दिया है जहां सांवली कुसुम आती है।
प्रदीप को इस गांव कविता के दोनों भागों में से अपना मुहावरा पकड़ना चाहिए। कुछ छोटी
कविताएं जैसे चंदामामा या दीमक भी असरदार हैं।

मैं, "विष्णु खरे" की तरह अच्छी या बुरी कविता के चक्र में नहीं पड़ता। प्रदीप
मिश्र ने इस संकलन में कुछ अलग-अलग तरह के तेवर दिए हैं। कभी वह काव्य भाषा
बुनने के क्रम में भाव गढ़ने लगता है। जैसे उलीचती रही पानी में जब वह कहता
है "उसने कहा / दूसरों को खुश रहो / तुम भी खुश रहोगे / और उम्र भर रहो
उदास"।

तो कभी इसके तत्काल बाद "जहांपनाह" में एक नए भाषाई संसार को रचता है।
अत: इन कविताओं में यदि पत्रकारिता के तेवर हैं तो प्रकृति की सघनता और उसका
मानवीकरण भी है। यदि कवि आत्मपरक है तो वह खोजी भी है। यदि वह चुन-चुनकर
शब्द को शब्द के पास स्थिर करने के मोह में है तो अन्त तक पहुंच कर एक संश्लेषण भी
उभारता है। कहना न होगा कि पाठकों के लिये कविता जैसी कविता की प्रस्तुति है
'फ़िर कभी'। □

ऐतिहासिक कथा

बादशाह तैमूरलंग और वीर बरोची

□ शिव रैना

बहुत बड़ा और बहुत ही खूबसूरत था हिन्दुस्तान उन दिनों। आजादी भी कम न थी। सामाजिक रस्मो-रिवाज भी क़ायम-दायम थे। लेकिन एकता नहीं थी। हर चौथे कोस पर, एक तथाकथित राजा था। और हर चौदहवें कदम पर, एक लहू-चूस आदमी और पैसा-चूस महाजन था। पड़ोसी का पड़ोसी से प्यार व सहयोग तो था—मगर वह एकता न थी, जो देश को इस्पात और सीमाओं को फौलाद बनाती है।

हमलावर तैमूरलंग अपने हृदय-हीन दल-बल के साथ हिन्दुस्तान में ज्यों प्रविष्ट हुआ था, जैसे पूर्वजों की खोई धरती पर लौटा हो। उसका साहस दुस्साहस में बदल चुका था। कामनाएं आकाश भेद रही थीं। हिन्दुस्तान के तत्कालीन मुट्ठी-भर वीर शासक, पलों-क्षणों में, घुटने टेक रहे थे आपसी फूट के कारण। लूट-मार, क़त्लो-ग़ारत और तमाशबीनी का बाजार गर्म था। सांस्कृतिक, साहित्यिक और धार्मिक चिन्ह, निरंतर नष्ट हो रहे थे। मांस और मदिरा के अलाबा, अय्याशी व बलात्कार के खूंखार काफिले रवां-दवां थे।

जहां आज पंजाब, हिमाचल प्रदेश और हरियाणा की सीमाएं मिलती हैं, वहीं एक गांव था, त्रिचोनी। नन्हा-सा खुशहाल गांव था। आत्म-निर्भर और निर्भीक। उन दिनों वहां एक ही वंश के पांच परिवार बसते थे। जांसू क़बीले के ये कड़ियल लोग, खुद को ख़ालिस आर्य-नस्ल का बताते थे अलग-थलग रहते थे। दूसरे लोगों से कम मिलते-जुलते थे। खेती-बाड़ी, पशु-पालन और बर्तनसाज़ी के अलावा, ये लोग एक और काम करते थे—"बरोबर" करने का काम। यानी, आधी रात को क्रूर अमीर लोगों को लूटना, और ग़रीबों में लूट का अनावश्यक माल बांटना। ये गठीले और बलिष्ठ लोग, किसी के क़ाबू में नहीं आते थे।

जांसू कबीले को जादुई औरतें अपने चुस्त पहिनावे, सिंदूरी चमड़ी और कमनीय क़द-काठी
के लिए प्रसिद्ध थीं। औरतों की संख्या जांसू मर्दों से दुगनी थी।

तैमूर के तीन सिपाही औरतों की टोह में, त्रिचोनी गांव के पास जा पहुंचे।
गांव की सीमा पर ठंडे-मीठे पानी की नक्काशीदार बावली थी। बावली की आड़ में, एक
जांसू नवयुवती हाथ-पैर धो रही थी। कुंआर का सोंधा-सोंधा महीना था। हवा में एक
मादक-सी खुनकी थी। प्राकृतिक हरियाली और बहुरंगे जंगली फूलों का नशा छा रहा था।
नवयुवती का नाम बरोची था। वह गांव के नंबरदार की भतीजी थी। अल्हड़ और शोख़।
लंबे रेशमी बालों और लंबे क़द में, बरोची लाजवाब थी। काले रेशमी लहंगे और कसे हुए
काले जम्पर में भी, उसका रूप-यौवन खुद को स्वतंत्र पा रहा था। बड़ी ही उद्यमी और
कसरती थी बरोची। वह कमान की तरह झुककर, अपने पैर और पिंडलियां धो रही थी।
उसकी लोच-खाई गोरी कमर और सुडौल वक्षस्थल से, आकर्षण की बिजलियां कौंध
रहीं थीं।

एक बार एक अड़ियल घोड़े की पीठ पर से नुकीली लकड़ियों पर गिरने से, बरोची
का बायां कान बेकार हो चुका था। श्रवण-शक्ति आधी रह गई थी। यही कारण था कि
तैमूर के कामोत्तेजित सिपाही उसके पीछे तक भी आ पहुंचे—मगर बरोची अपनी काली-
कजरारी आंखों पर, ठण्डे पानी के छींटे मारती रही। और फिर, अचानक बरोची ऐसे भड़की,
जैसे किसी ने उसके दिल पर जलता अंगारा रख दिया हो।

जिन उंगलियों से तैमूर के एक दुस्साहसी सैनिक ने बरोची की नंगी कमर छुई थी,
उन तीन उंगलियों को मच्छर की तरह मसल कर, बरोची चीखी : "हरामखोर! कमीनो!
जानवरो! तुम्हारी यह हिम्मत?"

घायल सिपाही तो सिर-कटे बकरे की तरह, खाई में लुढ़क गया। लेकिन उसके दोनों
ठिगने साथी, एक साथ लड़की पर टूट पड़े। उन दोनों का इरादा बरोची को विवस्त्र
करना था। उन पापियों के सशक्त पंजे बरोची के लंहगे और चोली तक पहुंच भी न पाए थे,
कि बरोची ने अपनी कंघी-नुमा चमचमाती छुरी से, दोनों बलात्कारियों की आंखें घायल
कर दीं। जिस समय ये चीखते-चिंघाड़ते सिपाही नेत्रहीनों की तरह बावली पर ठोकरें
खाने लगे, बरोची ने उन्हें खाई में गिरे घायल सिपाही समेत, बरगद के पेड़ के साथ बांध
दिया। उसने अपने एड़ी-चुंबी मज़बूत रेशमी परांदे से, तीनों को कस कर बांध लिया था।
वह दृश्य इतना अविश्वसनीय और अनोखा था, कि तैमूर के कुछेक दूसरे निहत्थे सैनिक भी,
दूर से हक्के-बक्के देखते रह गए। लुत्फ की बात यह थी, कि उन तीनों कैदियों के सिरहाने
बैठ कर, बरोची कच्चे अमरूद चबा रही थी।

तैमूर को इतिहास में "पर्यटक चीता" भी कहा जाता है। वह एक ही प्रिय स्थान पर
कई-कई बार जाता था। वह अपने ख़तरनाक हमलों के दौरान भी, नई-नई जगहों और
अजूबों का रसिया बना रहता। निहत्थे सिपाहियों ने तुरन्त तैमूरलंग के पास पहुंचकर,
आखों देखी घटना का हाल कह सुनाया।

दुपहर में घटी घटना, सांझ ढलने तक बरकरार थीं। बरोची न तो स्वयं बावली
से हिलीं, और न ही उसने कैदियों को रिहा किया। तैमूरलंग ने स्वयं अपनी विस्फारित

आंखों से, वह नज़ारा देखा। उसके तीनों सिपाही, भीगी-बिल्ली बने, टसुए बहा रहे थे : सुन्दरी मटक-मटक कर, कैदियों के चारों ओर घूम रही थी। चारों ओर सन्नाटा था। यों लगता था, कि उस पूरे बावली-क्षेत्र पर उसी आकर्षक नवयुवती का एकछत्र राज्य था। क्रोध और कौतूहल से तैमूर थोड़ी देर मौन रहा। फिर उसने राजसी रौब से कहा, "ऐ लड़की ! सच-सच बता तूने हमारे सिपाहियों की धोखे से मुश्कें कसी हैं या दामे-मुहब्बत से ?"

"बड़ा घटिया सवाल है !" बरोची अकड़ कर बोली, "क्योंकि इसमें मेरी बहादुरी और पवित्रता का कोई जिक्र नहीं।"

"खामोश, लड़की !" तैमूर चिल्लाया, "तुझे शायद पता नहीं; कि तू किससे बात कर रही है, और किसके सिपाही तूने धोखे से बांध रखे हैं ? तुम्हें पता चलेगा, तो सारा इलाका आग की लपटों में घिर जाएगा !"

बरोची ने आगे बढ़ कर कहा, "आपकी लूट-मार, आगजनी और तबाही की "शोहरत", हमारे इस गांव तक भी पहुंच चुकी है। ऐसा आदमी अगर पूरे हिन्दुस्तान का मालिक भी बन जाए तो मेरे जैसी अदना लड़की को डरा नहीं सकता। मैंने आपके इन नापाक सिपाहियों को धोखे से नहीं बल्कि बहादुरी से कैद किया है। क्योंकि इन्होंने मेरी इज्ज़त लूटनी चाही थी।" नवयुवती ने तैमूर को पूरी व्यथा-कथा सुनाई।

अचानक तैमूरलंग के नूरानी चेहरे के विकृत-भाव बदल गए। चेहरे पर स्निग्धता और सहानुभूति का एक सलोना साया लहराया। उसने अपने तीनों सिपाहियों को रिहा करके, उन्हें पांव की ठोकरें मारकर भगा दिया। फिर शान्त स्वर में पूछा, "हमें तुम्हारी बातों पर यकीन हो गया है, लड़की ! अच्छा, एक बात बताओ—अगर मेरे गुमराह सिपाही तुम्हें लूट लेते, तो तुम क्या करतीं ?

"मेरे गांव की औरतें लुटना नहीं जानतीं।" बरोची सुनकर बोली, लूटने से पहले ही, तीनों सिपाही परलोक पहुंच जाते। यक़ीन न हो तो आप खुद कोशिश कर देखिए—या कोई दूसरा "सूरमा" भेज कर देखिए।"

"मरहबा !" तनिक लड़खड़ा कर तैमूर ने प्रशंसात्मक ताली बजाई, "खुदा कसम, तुम्हारी इन बातों से, हमारे थके-मांदे दिलो-दिमाग को राहत-सी मिली है। तुम इतनी निडर और बहादुर हो। तुम्हारा नाम क्या है, लड़की ? तुम इतनी बाहिम्मत कैसे बनीं ?"

बरोची ने एक शोखी के साथ कहा, "अगर आप इसी जगह से सिपाहियों समेत लौट जाएं, तो मैं आपके सारे सवालों के जवाब दे सकती हूं।"

तैमूर ने अपने चेहरे पर बरसते क्रोध और रोष को पुन: दबा कर कहा, "मान लो कि मैंने तुम्हारा कहना पूरी तरह मान ही लिया !"

बरोची ने प्रफुल्लित स्वर में कहा, मेरा नाम बरोची है। "बरोची" का मतलब 'महबूबा" / प्रेमिका / होता है। हमारे क़बीले में पैदा होने वाली हर लड़की "बहादुरी"

के / बनावटी / पुतले से, बचपन में ही, ब्याह करती है। और फिर, किसी राजा-महाराजा ही को ब्याहने के सपने देखती है। मैंने भी कुछ ऐसे ही सुहावने सपने देखे हैं। इसलिए आम सिपाही या सरदार, मुझे एक आंख नहीं भाता।" बरोची एड़ियों के बल, एक मनोरम व्यायाम-सा करने लगी। तैमूर ठगा रह गया। एक लड़की निश्चय ही साधारण शोसित महिलाओं से एकदम हट कर थी। हर अंग सांचे में ढला हुआ। तलवार-सी लंबी बाहें, खनकती आवाज़ और कंचन का बदन। अब तक हिन्दुस्तान की सरसब्ज़ ज़मीन पर, उसने ऐसी भरी-पूरी लड़की पहलो बार देखी थी। बरोची तेज़ी से तैमूर के लड़ाकू तन-मन में उतरती चली गई।

तैमूरलंग ने चबूतरे की दीबार का सहारा लेकर, मीठी चुटकी ली, "तो अब तक मिला कोई राजा-महाराजा, लड़की ?"

"क्यों नहीं ?" बरोची एक भंव उठाकर बोली, "एक नहीं, सैंकड़ों मिले। लेकिन वो सब, "दिल के राजा" नहीं थे। लम्पट थे, बदचलन थे। बदनाम भी।"

संघर्षों और आत्म-निमंत्रित संकटों से घिरे तैमूर ने, बरोची की बादामी आंखों में आंखें डालकर पूछा, "हमारे बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है, बरोची ?"

"वैसा ही—जैसा नज़रिया आपका इस वक्त, मेरे बारे में है।" अपने रेशमी लंहगे को सहलाते हुए, बरोची ने पहली बार लाज से अपनी निगाहें झुका लीं, "मगर मुझे यह हरगिज़ पसंद नहीं है, कि हुज़ूर हिन्दुस्तान की शान्त और मासूम धरती को, फिजूल ही रौंदते फिरें।"

तैमूर लंग जैसे पत्थर-दिल और लापरवाह हमलाबर के मन में पहली बार जो प्रणय का एक अद्वितीय बीज फूटा था, वह बीज अचानक जल-सड़ गया। तैमूर ने तड़प कर कहा, "तुम भी मौकापरस्त लड़की हो. बरोची! औरत सचमुच किसी को प्यार नहीं करती। औरत सिर्फ खुद को और मुनासिब मौकों को, चाहती है। इसीलिए, में औरत को कुछ नहीं समझता। तुम लोगों के साथ तो वही सुलूक होना चाहिए. जो मेरे मुंहजोर सिपाही जगह-जगह करते फिर रहे हैं..।" तैमूर आवेशपूर्वक थोड़ा आगे बढ़ा।

बरोची की आंखों में आंसू थे। प्यार के या पश्चाताप के ? कौन जाने ? वह बहुत कुछ कहना चाहती थी। उसने जैसे ही यथोचित जवाब देना चाहा, जांसू-कबीले के छुपे हुए आदमियों ने तैमूर को चारों ओर से घेर लिया। तैमूर ने बरोची को झिझोड़ कर कहा, "तो यह है मक्कार और मौकापरस्त औरत का असली चेहरा।" उसने तलवार निकाल ली।

बरोची ने तैमूर की शाही तलवार खींच कर, अपने ही कबीले के दो जवान हमलावरों को मार डाला। लेकिन तीसरा युवक बरोची के पेट में छुरा घोंपने में सफल हो गया। तैमूर सुरक्षित भागने में सफल हो गया। परन्तु वह अन्त तक, औरतों को मौकापरस्त और प्रेम-शून्य ही समझता रहा। □

व्यंग्य

सर्दी, छत और हम

□ डॉ० गोपाल बाबू शर्मा

बड़े लोगों की तरह कुदरत के मिज़ाज भी बदलते रहते हैं—कभी गर्मी, कभी बरसात तो कभी सर्दी। इन मौसमों की अपनी-अपनी अदाएं हैं। इन अदाओं पर फिदा कवियों ने अपनी कलम घिस-घिस कर प्रकृति-प्रेमी (मौसमी) कवियों के रूप में बड़ा नाम कमाया है। मगर ये सब के सब मौसम वास्तव में अमीरों का रुतबा कायम करने के लिए बने हैं।

अगर दौलत हो, तो उसकी बदौलत गर्मी में भी बाहरी और भीतरी तरी बनी रहती रहती है। गर्मी के दिन आते हैं तो पैसे वाले लोग फ्रिज का ठण्डा पानी पीते और कूलरों की हवा खाते हैं या मैदान छोड़कर पहाड़ों पर दौड़ जाते हैं और वहां जी भर कर गुलछर्रे उड़ाते हैं।

बरसात आती है तो आम आदमियों के लिए दुर्दिन बन जाती है। उनके टूटे-फूटे घर टप-टप आंसू बहाने लगते हैं, लेकिन धनी लोग अपनी बालकनी में बैठकर गरमागरम चाय के साथ पकोड़ियों का मजा लेते हैं। बरसात में कार पर सवार होकर दूसरे राहगीरों पर मजे में छींटे उड़ाते, कीचड़ उछालते आप कहीं भी चले जाइए, कोई कुछ कहने की हिम्मत नहीं कर सकता।

यों तो चम्पी की तरह सर्दी में भी बड़े-बड़े गुण हैं। अगर सर्दियों के दिन न आते, तो निश्चित मानिए कि अदालतों में तलाक के मुकद्दमे और ज्यादा बढ़ जाते। सर्दी के दिनों में पति-पत्नी के बीच रार-तकरार प्राय: नहीं होती और अगर होती भी है, तो बहुत जल्दी सुलह में बदल जाती है। सरकारी सलाह और बहलावे-फुसलावे के बावजूद सर्दियां देश की आबादी को समृद्धिशाली बनाती हैं।

सर्दी में दिन छोटे होते हैं और रातें काफी लम्बी अर्थात् काम कम और आराम ज्यादा। 'आराम बड़ी चीज़ है, मुंह ढक कर सोइए।' यह कहावत भी सर्दी की रातों की वजह से ही बनी होगी, क्योंकि गर्मी और बरसात में तो आदमी का सोना हराम हो जाता है। न वह चैन से सो पाता है और न मुंह ढक कर ही।

सर्दी जितनी विकट होती है, लोगों को उतना ही निकट लाती है। गर्मी की तरह सर्दी में कोई किसी से यह नहीं कहता, "अरे, ज़रा परे हट कर बैठो!" बल्कि रजाई में ही नहीं, अधियाने और अलाव पर तापते वक्त या सफ़र के दौरान बस और ट्रेन में भी लोग अलगाव को छोड़कर एक-दूसरे के नज़दीक खिसकते आते हैं और बिना किसी भेद के राष्ट्रीय एकता का भाव अपनाते हैं।

लेकिन देखा जाए तो यह सर्दी भी मालदारों का ही अधिक फेवर लेती है और गरीब आदमी की कलई बड़ी बेदर्दी से खोल देती है। सर्दी में कीमती और आलीशान ऊनी कपड़ों से अमीरों की शान दूनी हो जाती है, जबकि गरीब बेचारे कपड़ों के मारे ब्याह-बारातों और दावतों में भी जाने से कतराते हैं।

सर्दी में गर्मी लाने और तन्दुरुस्ती बढ़ाने के लिए आम आदमी को काजू-पिस्ते और बादाम कहां धरे हैं? मूंगफली तक के दाम तो अब आसमान छूने लगे हैं। हां, मूंगफलियों के महंगे होने से एक लाभ का काम यह ज़रूर हुआ है कि अब बसों और रेल के डिब्बों में मूंगफली के छिलकों से होने वाले कूड़े में काफी कमी आ गई है। अगर लोग एक रुपए में सिर्फ पच्चीस-तीस ग्राम मूंगफली पाएंगे, तो सोचने की बात है कि छिलके कहां तक कूड़ा फैलाएंगे?

कभी लोग स्वस्थ बने रहने और लट्ठे की तरह तने रहने की गरज़ से सर्दियों में मेथी या ग्वार के पट्ठे के असली घी वाले लड्डू बनवा कर खाया करते थे। अब तो शायद बहुत से लोगों ने उनका नाम भी न सुना हो।

झण्डू के केसरीजीवन का जोशीला विज्ञापन पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ कर या टी० वी० पर देख कर साठ साल का जवान बनने के लिए न जाने कितनों का जी ललचाता होगा, मुंह में पानी भर आता होगा, पर उसे खरीद कर खा पाना क्या हर ऐरे-गैरे नत्थू खैरे के बस की बात है।

च्यवनप्राश अवलेह भी कुछ कम महंगा नहीं, और वह असली रूप में मिलता कहां है? केसर-कस्तूरी, कीमती भस्मों और अष्टवंग को मारिए गोली, उसमें शुद्ध आंवले भी हों, तो गनीमत समझिए। स्वास्थ्यवर्द्धक दवाओं की बात गई भाड़-चूल्हे में, अब तो जीवन-रक्षक दवाओं में भी शुद्धता खोज पाना आलू में से तेल निकालने के बराबर है।

धूप से विटामिन ए और डी मिलते हैं, जो आंखों और हड्डियों के लिए निहायत ज़रूरी हैं। मिलने को तो ये विटामिन घी में भी मिलते हैं, लेकिन घी डालडा हो या देसी, दोनों ही आज के आदमी की तरह अपनी पहिचान खो चुके हैं और इतने महंगे हो गए हैं कि इन्हें मोल लेकर खाने का हौसला गोल होता जा रहा है। महंगाई का यही आलम रहा

तो वह दिन दूर नहीं, जब डॉक्टर किसी कमजोर मरीज के लिए अपने नुस्खे में यह लिखा करेंगे कि एक या दो ग्राम घी सुबह या शाम चाट लिया करो।

यों तो डिब्बों और पैकिटों पर लिखा रहता है कि घासलेट घी भी विटामिन 'ए' और डी से युक्त है, लेकिन हमारे यहां खाने के दांत और होते हैं, दिखाने के और। और लिखे होने से क्या फर्क पड़ता है? सिगरेट की डिब्बी पर लिखा रहता है कि सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, लेकिन फिर भी सिगरेट धड़ल्ले से बिकती है और लोग उसको मुंह से धुए के छल्ले निकाल-निकाल कर शान से पीते हैं। खाना खराब कर देने वाली शराब के भी एक से एक बेहतरीन और लाजबाब विज्ञापन 'सोडे' के नाम पर किये जाते हैं और लोग हैं कि सब कुछ जानते हुए भी उसे पिये जाते हैं।

आज के जमाने में सर्दी में गर्मी लाने और खाने के लिए बस ले-दे के एक धूप ही तो बची है। धूप सस्ती जरूर है, पर हर व्यक्ति के नसीब में नहीं। दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई जैसे महानगरों के लोग सर्दियों में धूप के लिए तरस जाते हैं। वहां धकापेल दौड़ते वाहनों से दुर्घटना-ग्रस्त होकर एकदम ऊपर पहुंच जाना बहुत आसान है, किन्तु बहुमंजिली इमारतों की छत पर पहुंच पाना और धूप खाना, मन्दिर में पुजापा चढ़ाए बिना देवता के दर्शन और प्रसाद पा लेने जैसा ही दुर्लभ है।

कहने को कहा जाता है कि ईश्वर उनकी मदद करता है, जो खुद अपनी मदद करते हैं, लेकिन हमारे देश में लाखों लोग ऐसे हैं, जो अपनी मदद ही नहीं, जीने के लिए जी-तोड़ कोशिश भी कर रहे हैं। वे अपने भाग्य को रोते हैं और फुटपाथ पर सोते हैं, मगर ईश्वर ने अभी तक उन्हें लिफ्ट तो क्या, एक नसैनी तक देने का कष्ट नहीं किया, क्योंकि उनके पास अपनी कोई छत नहीं है।

सचाई यह है कि चाहे कुछ हो या न हो, पर आदमी के पास सिर छुपाने के लिए और धूप खाने के लिए एक अदद खुली छत जरूर हो। छत का अपना ही महत्त्व है। छत के न होने पर घर की वही स्थिति होती है, जो दूल्हे के बिना बारात की। यह अनुसन्धान का विषय है कि छत्र, छत्रक, छतरी, छाता, छाती, छत्ता आदि शब्दों का कोई न कोई रिश्ता छत से अवश्य रहा होगा। कनकोवे उड़ाने और लड़ाने की कला का जन्म तो सौ फीसदी छत से ही हुआ है।

मिलने को तो धूप रास्ते में भी मिल सकती है, परन्तु जो शिष्टता और सुख किसी चीज को तसल्ली से बैठ कर खाने में है, वह चलते-फिरते और भागते-दौड़ते हुए खाने में कहां है? धूप बखूबी छत पर ही खायी जा सकती है। आजकल जमीन के भाव इतने ऊंचे हो गए हैं कि घरों के आंगन छोटे होने लगे हैं। उनमें धूप कहां समा पाती है। आती भी है, तो ज़रा सी देर ठहर कर चोरों की तरह दबे पांव भाग जाती है। जिसकी बहुत बड़ी कोठी या बंगला हो, उसमें लम्बा-चौड़ा आंगन या लान हो, ऐसा भाग्यवान हर कोई नहीं होता। जिनके मकान में दस फुट चौड़ा लॉन होता भी है, वे भी मनभाये किराये के लोभ में सारे नियम-कायदों को ताक पर रखकर उसमें दुकान निकलवा लेते हैं या अपने शादी लायक निकम्मे-बेकार बेटे को जनरल स्टोर खुलवा देते हैं। अतः सर्दी के दिनों में एक मात्र

घर की छत ही है, जहां धूप ली जा सकती है । खुदा का लाख-लाख शुक्र है कि इस बन्दे को छत मिली हुई है ।

सर्दी में धूप खाने का सबसे ज्यादा सुनहरा मौका अध्यापक-वर्ग को मिलता है। पैंतीस-पैंतीस या चालीस-चालीस मिनट के तीन-चार घण्टे लिए और उसके बाद अगर ट्यूशन के जंजाल में न फंसे तो फुरसत ही फुरसत । सौभाग्य से हम अध्यापक हैं, अतः सर्दियों के दिन अक्सर छत पर ही काटना चाहते हैं । हालांकि हमारा उद्देश्य विशुद्ध रूप से छत पर धूप खाना या पूरी छुट्टी के दिन तेल-मालिश करना ही होता है, लेकिन हमारी श्रीमती जी को हमारा यों छत पर जाना और धूप खाना रास नहीं आता । वे हमें, सदन में विपक्ष की तरह, रोकती-टोकती रहती हैं और कहती हैं, "वाह, तुम जब देखो, तब छत पर ही टंगे रहते हो । भले आदमियों की तरह नीचे कमरे में क्यों नहीं बैठते ?"

सर्दी की गुनगुनाती धूप में जब हम छत पर लेटे-लेटे अपनी कोई गज़ल या गीत गुनगुनाने लगते हैं, तो श्रीमती जी यह समझ बैठती हैं कि हमें किसी की याद सता रही है । उन्हें कैसे समझाएं कि हम शायर होने के बावजूद रिटायर होने के करीब हैं और अब हमारी उम्र आंखें सेंकने की या कंकड़ में प्रेम-पत्र लपेट कर किसी दूसरी छत पर फेंकने की नहीं, सिर्फ धूप सेंकने की रह गई है । हां, आप चाहें तो छत पर धूप में बैठकर रजाई में डोरे या स्वेटर में नई डिजायन के फन्दे डाल सकती हैं, पर हम तो अब न किसी पर डोरे डाल सकते हैं, न फन्दे । इसलिए जानेमन ! आप हम पर नाहक शक करती हैं और शक की दवा तो हकीम लुकमान साहब के पास भी नहीं थी ।'

हम तो अपनी श्रीमती जी से कई बार यह निवेदन करते हैं कि मैडम, सारे गम छोड़िए और आप भी हमारे साथ छत पर आकर धूप से नाता जोड़िए, मगर उन्हें अपनी गृहस्थी के भारी कामों से फुरसत ही कहां ? वे और औरतों की तरह छत पर चढ़कर पड़ोसियों से बातें नहीं बनातीं । गीले कपड़े और अपने बाल भी नीचे ही सुखा लेती हैं ।

आप ही वताइए, हम क्या करें ? सर्दी है, छत है और हम हैं, लेकिन अपनी देवी जी के आगे हमारे इतने दम-खम कहां कि हम उनका विरोध कर सकें । बुढ़ापे में भी आदमी आपे में न रहे, उलट कर पत्नी से कुछ कहे तो बस कयामत ही कयामत है। इसलिए हम श्रीमती जी का मूड देखकर ही छत पर कदम रखते हैं और इस तरह रोज़-रोज़ न सही, पर कभी-कभी ही छत पर सर्दी की धूप का आनन्द उठा लेते हैं, यही क्या कम है ? □

कवितायें

सम्भव है

□ राजेन्द्र परदेसी

सम्भव है
मिलना असम्भव हो
पर
आभास देकर
मन को
कुछ पल के लिए
शांति ही दे दो
जैसे
धरती और आकाश
दूर
क्षितिज के उस पार
मिलते नहीं
पर
मिलने का आभास तो
देते हैं
दृष्टि को नहीं लगता
कि दूर जाकर
वह अलग है
कुछ ऐसा ही
तुम करते
तो मेरा मन भी
कुछ पल के लिए सही
उदासी से मुक्ति पाकर

नये उत्साह से
जीने के लिए
कोई रास्ता ढूंढता
रास्ता मिलने पर
मंज़िल दूर भी होती
तो क्या ?
कभी-न-कभी
पा लेने की चाह
मन में होती
और
अपनी यात्रा
जारी रखता।

□

एक निर्वासित मित्र-कवि के नाम

☐ अनिला सिंह चाड़क

तुम कहते हो कि छीन ली
गई तुम से तुम्हारी नदी
चिनारों की हवा,
छिन गई तुमसे पहाड़ों की
बर्फ
हब्बा खातून की कविताएं
पर कहती हूं मैं कि
सब है तुम्हारे पास ही
क्योंकि जब कभी झांका
मैंने तुम्हारी आंखों में
साफ देख सकती हूं मैं
एक जेहलम तुम्हारे
भीतर ही भीतर बहती है
दूर कहीं गिरती है
सफेद बर्फ
हवा के झकोरों से
हिलते हैं चिनार के पत्ते
और तुम अपने भीतर
के जिन्दा शहर से
अजान
दावा करते फिरते हो
इसके न होने का
मेरे दोस्त !

क्यों भटकते हो अपनी
ही
कविताओं की तपती
संकरी गलियों में नंगे पांव
करते हुए फरियाद
यहां तुम्हारी नहीं सुनी जायेगी
चलो आज सुस्ता लो
कुछ पल
मींचे रहो आंखें देर तक
और महसूसो अपने भीतर
चिनारों की खुशबूदार हवा
हब्बा-खातून की गूंजती
कविताएं
गिरते झरनों की किलकारियां
महसूस करो कि
एक जेहलम तुम्हारे भीतर
ही भीतर बहती है
डुबो दो उसमें
अपने छालों भरे
लहूलुहान पांव
पांव जिन्हें सहलाने को वह
न जाने कितने बरसों से
अपने सूने किनारों पर
अपनी जर्जर कोहनियां
टिकाये कर रही है
इन्तज़ार

गज़ल

□ ओ. पी. शर्मा सारथी

एक सन्नाटा था मैं खाली मकां था,
मैं गुज़रता जा रहा था इम्तहां था।

मैं किनारे तोड़ कर भी बह रहा था,
प्यार का दरिया था आंखों से रवां था।

मुझको भी चढ़ना पड़ा सूली पे इक दिन,
मैं कहां मंसूर ईसा मैं कहां था।

याद थीं जितनी दुआएं मांग डालीं,
सारथी खाली था खाली आसमां था। □

गज़ल

□ अनवार मिर्ज़ा

नयी रुत्त लौट आयेगी नयी सरदर्दियां लेकर,
किसी बे पर परिंदे के लिये हमदर्दियां लेकर।

यकीनन इस गुलिस्तां में बहारें आयेंगी इक दिन,
मेरे नंगे चिनारों के लिये भी वर्दियां लेकर।

मुझे रह-रह के भी याद आता है मेरा माज़ी,
शबाब आया था मुझ पर भी आवारागर्दियां लेकर।

मजाज़-ए-यार में पिछले दिनों में कुछ तमाज़त है,
अयादतगर हवा अब तो चली अफसुर्दियां लेकर।

सबा लायी थी पैगाम-ए-मसर्रत रुत्त बदलने का,
बहार आयी मगर अनवार आयी ज़र्दियां लेकर। □

कश्मीरी कविताएं

□ मुहम्मद अयूब बेताब
अनु० इच्छुपाल सिंह

ज़मीर

मेरी ज़मीर रुकेगी नहीं
कर लेगी खुदकशी
यदि खुदकशी न करती
तो ?
मैं कैसे रहता जीवित

तीली

वहां पड़ी है आखिरी तीली
सहेज लेना
संभाले रहना उसे
क्या जानिये !
कोई घर अभी बचा रह गया हो खाली
अनजला ! साबुत

ध्यान

देखना है तुमको अगर
उसका सात मंज़िला मकान
रखना
अपनी टोपी का भी ध्यान

बदला

बहुत सारी ढेर ढेर
गिरनी चाहिये बर्फ
हमें बनाना है 'उस' का बुत
जिसे हम जीत नहीं सके
काबू नहीं पा सके हम
जिस पर

बुलावा

अमावस की रात स्याह, घुप्प अंधेरा
और खामोश धुंध
एक अंधेरे कमरे में
छुप बैठा है एक उल्लू की भांति
बुलाता, बिलबिलाता
चीखता बुलाता है

जुदाई

यह बात 'रुसल मीर' से कभी मत कहना
हरगिज़ न कहना
उसकी केसर क्यारी
लग गई है
विदेशियों के हाथ

* रूसल 'मीर' कश्मीरी के ख्यात कवि

बस देखेंगे

□ भागीरथ भार्गव

नहीं, नहीं ऐसा तो सोचा नहीं था
कि ऐसे निष्ठुर समय में
ऐसा आयेगा बेईमान मौसम
कि बटोर ले जायेगा सब कुछ
कि शून्य छोड़ जाएगा
मेरे और तुम्हारे बीच
कि न तुम्हारी आवाज़ मैं
और न तुम मेरी आवाज़
सुन पाओगे

बस देखेंगे एक दूसरे को
मात्र पथराई दृष्टि से

क्या बेईमान मौसम को बदलने का
नहीं हो सकेगा कोई सम्मिलित प्रयास। □

जहां चांद है वहां

□ अभिशाप

सोचता हूं,
क्यों न ?
दोनों बच्चों की बोतलों में
दूध की जगह
बस, इतना सा नशा घोल दूं,
जिसके बाद वह
रोना, चिल्लाना, चीखना भूल जाएं
यहां तक कि मां बाप की सूरतें भी
और चुप-चाप सो जाएं
किसी भी गोद से बे-खबर
मेरे इस टूटे हुए घर के
टूटी हुई छत के नीचे
इक टूटी हुई झिलंगी खाट पर

यहां से वह,
अगर, गिरें भी तो
उन्हें एहसास न हो
किसी भी चोट का

और मैं उनका बाप होने के नाते
खामोश खड़ा
अंदर ही अंदर कहीं
सिन्धु घाटी से गुजरता
किसी विज्ञान के सहारे
चांद पर जाने का रास्ता ढूंढ लूं
क्योंकि कहते हैं
वहां पर भूख नहीं होती
और हाथ मज़दूरी से
घायल नहीं होते
इसलिये
बस, सिर्फ ;
इतना सा नशा
सोचता हूं
क्यों न मिला दूं आज
दूध की बोतलों में

जिसके बाद,
मेरे दोनों बच्चे
धरती पर न रहकर
चुप-चाप
चाँद पर चले जाएं
जहां भूख नहीं होती
हाथ मज़दूरी से
घायल नहीं होते।

□

अपना सच

□ कृष्ण कुमार अस्थाना

वह
न जाने कहां से
निकला
और मेरा रास्ता
रोककर खड़ा हो गया

फिर उसने
जेब से चाकू निकाला
आकाश में
बिजली सी चमकी
और मेरे पांव
पत्थर के हो गए

तब मैंने
जेब में हाथ डाला
अपना सच
निकाला
और उसके हवाले कर दिया

हे भगवान !
अब मैं अपने-आप में
कितना हल्का
महसूस कर रहा हूं

□

एक टुकड़ा ज़िन्दगी

जब मेरी खाट उड़नखटोला बन गई थी......

□ डॉ. अशोक जेरथ

बरस के आखिरी दिन हैं......और मैं 1990 के उस दिसम्बर को याद कर रहा हूं जब मेरी खाट 'उड़न खटोला बन गई थी। तब मेरा तबादला शिमला आकाशवाणी में बतौर सहायक निदेशक हुआ था। शिमला में क्रिसमस की छुट्टियों में बर्फ पड़नी शुरू हो जाती है। जगह-जगह से बर्फबारी देखने के शौकीन पर्यटक 24 दिसम्बर से ही शिमला में जमा होने लगते हैं। उस वर्ष भी 24 दिसम्बर की शाम तक अनेक पर्यटक शिमला पहुंच गए थे और हिमपात के दृश्य को देखने की प्रतीक्षा में थे पर प्रकृति की मनमानी समझिये जो 25 को हिमपात नहीं हुआ 26 को भी नहीं। लोग प्रतीक्षारत रहे। सत्ताईस और अठाईस दिसम्बर भी बीत चला और फिर करीब आधी रात गये हिमपात शुरू हुआ तो 31 दिसम्बर की शाम तक होता ही रहा। सारे मार्ग अवरुद्ध हो गए—सभी वृक्ष 'क्रिसमिस ट्री' बन गए। देवदारों की फर पर बर्फ के फाहे ऐसे लग रहे थे जैसे बनावटी वृक्षों पर रूई के फाहे रखे हुए हों। शिमला नगर की सड़कों पर तीन से चार फुट तक बर्फ पड़ चुकी थी। हवा चली तो सर्दी इतनी बढ़ गई कि पानी की पाईपों में पानी तक जम गया। अनेक स्थानों पर पाइपें फट गई थीं। वर्फीले तूफान में बिजली की तारें छिन्न-भिन्न हो गई थीं। अतः सारा शिमला अन्धेरे में डूब गया। पीने को पानी न था। होटलों में बर्फ को पिघलाकर पानी का उपयोग हो रहा था। होटलों के आगे सूचनापट लगा दिए गए कि खाना उपलब्ध है पर पानी का प्रबन्ध आपको स्वयं करना है। कुछ रेस्तरां वालों ने शिमला के निचले हिस्से में स्थित चश्मों से पानी ढोया जो उन्हें आठ से दस रुपये प्रति कनस्तर पड़ा अतः उन्होंने पानी के गिलास पर भी कीमत चढ़ा दी। एक अफ़रा-तफरी सी मच गई थी। जो लोग मात्र दो

तीन दिन की जेब लिये शिमला आए थे, रास्ते बंद हो जाने से फंस गए। न उनके पास ठहरने की कोई ठौर था न खाने का ही कुछ सबब। कई लोग होटलों से निकल कर रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर बिखर गए, जिनके पास अपनी गाड़ियां थीं वे उन गाड़ियों में दुबक गए, बर्फ पड़ती रही। और वे यातना भरी आंखों से आकाश की ओर देखते रहे कि कब बर्फबारी बंद हो और वे अपने घरों को जा सकें। एक व्यक्ति तो कड़ाके की ठंड के कारण अपनी कार में ही अकड़ गया था। उसकी कार भी पूरी तरह बर्फ में धंस गई थी। हमारा तो और भी बुरा हाल था। केन्द्र के बाहर एक ढाबा था जहां चाय और खाने के स्नैक्स वगैरा मिल जाते थे। मैं चूंकि उन दिनों केन्द्र के गेस्ट हाउस में ही ठहरा हुआ था अत: खाना पीना उसी ढाबे से होता था पर फिर बर्फबारी और पानी न मिलने पर उसने भी अपना ढाबा बंद कर दिया था। उस बर्फ में वाहर जाया नहीं जा सकता था अत: मन मसोस कर रह गया। कुछ दिन पहले एक ब्रेड भर खरीदी थी जिसके दो स्लाईस घर से लाए अचार के साथ खा लेता रहा। एक दिन और किसी तरह ढकेला। प्रात: नहाने की आदत थी नहाए बिना कुछ भी करने का मेरा मन नहीं होता। पर पानी कहां था? बाल्टी भर दूधिया बर्फ पिघलाई तो लोटा भर मटमैला पानी वना। दूसरी बाल्टी नहीं थी उसी पानी में और बर्फ डालकर पिघलाई तो दो लोटे भर पानी बन गया। उससे किये बस स्पंज भर से ही सन्तोष कर लिया। गेस्ट हाउस आकाशवाणी केन्द्र के निचले तल पर था जिसका तीसरा तल राष्ट्रीय मार्ग पर खुलता था। पहाड़ी इमारतें ऐसे ही बनी होती हैं। शीशों के उस पार बर्फ का अपार संसार फैला था। देवदार बर्फ से अटे क्रिसमिस ट्री बन गए थे। शायद किसी और समय वह दृश्य ओर भी मनमोहक होता यदि घर पर सभी खाने-पीने और अपने को गर्माये रखने की सुविधाएं होतीं पर वहां एक लिहाफ को छोड़कर कुछ नहीं था जहां तक कि 30 की शाम तक ब्रेड भी खत्म हो गई थी। भूख के मारे बुरा हाल था। सर्दियों में तो वैसे भी भूख ज्यादा लगती है। चाय पिए ,हुए अनेक दिन हो चले थे कि उस रोज शाम को अचानक केन्द्र के सीनियर अनाऊंसर ने बेल की। बाहर आकर देखा तो ओवरकोट, टोपी और दस्ताने कसे मेहता सामने खड़े थे। "सर! हमें पता ही नहीं चला कि आप तीन दिन से यहां कैद हैं। मेरा क्वार्टर बिल्कुल पास है आप वहां आ जाते। पर मैं तो बस खड़ा-खड़ा अपने रक्षक की ओर देखता रहा। यह अकेलापन भी व्यक्ति को तोड़ देता है और वह भी ऐसी स्थिति में जबकि चारों ओर से नाकाबंदी हो गई हो। ऐसी कैद-ए-तन्हाई !! उफ !! और कहीं निकला तक न जा सके। पढ़ने-लिखने वाला आदमी तो अवश्य ही अन्य लोगों से ज्यादा देर, ऐसी स्थितियों में जी सकता है पर इसकी भी तो एक सीमा है आखिर कितना पढ़ा जाए कितना लिखा जाए! अत: मेहता का आना मानो ईश्वर का आना सिद्ध हुआ। उसे भीतर आकर बैठने को कहा तो उसने अपने पांवों में पहने हुए बर्फानी जूतों की ओर संकेत करते हुए कहा कि आपका सारा कमरा पानी से भर जाएगा। उसके ओवरकोट पर बर्फ के फाहे जहां तहां अटके हुए थे। बर्फ निरन्तर पड़ रही थी। मैंने खिड़की का पर्दा एक ओर सरकाया शीशे से झांक कर देखा किरनम-किरनम बर्फ के दूधिया रूई के फाहे वृक्षों की फर पर जहां-तहां अटक रहे थे। बीच आंगन में लगी 'डिश' को बर्फ ने पूरी तरह से ढक दिया था। बिना कोई और बात किए मैंने मेहता को थोड़ा रुकने का संकेत किया और तुरन्त तैयार होकर उसके साथ हो लिया। केन्द्र की इमारत के

आंगन में करीब तीन फुट बर्फ गिरी हुई थी जिस पर आने-जाने से अपने आप रास्ता बनता चला, गया था। लगभग कमर तक ऊंची बर्फ में से गुज़रते हुए, बचते फिसलते हम मेहता के घर पहुंचे। उनके घर की चिमनी में से धुआं निकल रहा था। धुआं उस बर्फीली चादर में लिपटी शाम को जैसे जीवंत कर रहा था। छितराता हुआ धुआं देवदारों की फर को जैसे हाथों से थाम सहारा लेते हुए ऊपर चढ़ रहा हो, फ़र पर पड़ी बर्फ पानी के मनकों में बदलती 'टप्-टप्' ऊपर से नीचे गिरती एक लय रच रही थी। अद्‌भुत दृश्य था कि आंखें न अघाती थीं। इधर भूख से आंतें कुलबुलाने लगीं। 'गेस्ट रूम' की खिड़की के उस ओर केन्द्र का आंगन पार करते ही एक बहुत पुराना देवदार मौन यति सा खड़ा था। इसके मोटे तने में एक छोटा-सा कोटर था जिसमें तोते रहते थे। अक्सर उनको चहकते, चोंचें लड़ाते मैं देखा करता। कई बार ये तोते सीधे, किसी जहाज की तरह, हवा में तैरते हुए उस कोटर में घुस जाते थे। तब उस दृश्य को मैंने बहुत बार अपने कैमरे में कैद करना चाहा था। मेहता के साथ चलते हुए अनायास मेरा ध्यान उस कोटर की ओर चला गया। देखा तो दो नन्हीं आंखें टुकर-टुकर हमें देखे जा रही हैं। मैंने सोचा, बाकी तोते भी पंख समेटे, एक दूसरे से हिलगे हुए 'चुप्प' अपने कोटर में दुबके बैठे होंगे। एक सुखद अनुभूति मन को विभोर कर गई पर दूसरे ही क्षण अपने पेट में दौड़ते चूहों को याद कर सोचने लगा कि ये तोते इन दिनों अपना आहार कहां से पाते होंगे ?

तब......मेहता के घर में घुसते ही जैसे जान में जान आई। एक ठंड भरा संसार पीछे छूट गया था और हम अब एक गुनगुने वातावरण में आ गए थे। जूते खोल कर, बर्फ के फाहों को अपने कपड़ों से झटक कर हम लिहाफों में घुस गए। मेहता साहब की बिटिया ने कमरे से लगी रसोई के चूल्हे में 'दींनियां' (चीड़ की खपचियां) जिसमें से (बिरोजा निकलता है) झोंक दीं तो भभकती आग से सारा कमरा दमक उठा। किसी दूसरे क्षण में यह अहसास शायद अच्छा नहीं लगता पर उस रोज, उस समय, भला-सा लगा। थोड़ी देर बाद दो गिलास गर्म दूध आ गया हो मेहता साहब ने उठकर कहीं से दो गोलियां उठाकर दोनों गिलासों में डाल दीं और एक गिलास मेरी ओर बढ़ा दिया। मैं प्रश्नात्मक दृष्टि से उन की ओर देख रहा था। वे हंस दिए—"अरे साहब कुछ नहीं, इसे पी जाइये, फिर देखिये ठंड कहां काफूर हो जाएगी।" कह कर उन्होंने अपना गिलास भी मुंह से लगा लिया। धीरे-धीरे मैं भी जब दूध पीने लगा, तो लगा कि आंतों में और भी ज्यादा कुलबुलाहट मचने लगी है। धीरे-धीरे अपने भीतर गर्मी और फिर एक अजीब सा सरूर भरा सुख महसूस करने लगा—एक तसल्ली लिए मैं आंखें मूंद कर ज्यादा से ज्यादा उस सुख को बटोरने की कोशिश में लगा था कि मेहता की आवाज ने चौंका दिया।

"क्यों सर! कैसा लग रहा है?" मेहता की आवाज मानों कहीं दूर से आ रही थी। मैंने आंखें खोलकर उन्हें देखा वे मुस्कुरा रहे थे, एक रहस्य भरी मुस्कान।

"सर आप अभी आराम करें, आज खाना यहीं खाएंगे।"

मैं धीरे से उठा तो उन्होंने वहीं बैठे रहने को कहा पर मैं ज़रा एक बार फिर केन्द्र तक घूम आना चाहता था अत: उसे विश्वास दिला कर कि एक घंटे में खाने के समय तक

आ जाऊंगा। जूते पहन कर उस ओर चल पड़ा तभी लगा जैसे रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा हो आया है, बर्फ का दरिया ऊपर की ओर बिछता चला गया है। मैं दो कदम आगे चलता था तो लगता था तीन कदम पीछे की ओर मुड़ रहा हूं। सामने के पेड़ के कोटर में से झांकती तोतों की आंखें कहीं गायब हो चुकी थीं। पर मुझे लगा कि अन्धेरें के भीतर, कोटर के ठीक बीच में से वे मुझे देखते मेरी खिल्ली उड़ा रहे हों—"क्यों ? कैसी रही ?" अब तो वह पहले सी सुखद अनुभूति भी पता नहीं कब कैसे कहां गुमहो गई थी किसी तरह अपने को घसीटता सा केन्द्र में पहुंचा तो लगा कि मुझे आराम की ज्यादा जरूरत है। अत: स्टूडियो न जाकर सीधे अपने कमरे में जा पहुंचा, जूते उतारे और कपड़ों को झटक कर लिहाफ में घुस गया। सुबह एक नई पुस्तक पढ़नी शुरू की थी जहां छोड़ी थी। वहीं से मुड़े पन्नों को सीधा करके पढ़ने लगा। थोड़ी देर बाद लगा कि ऊपर की पंक्ति बहुत ऊपर उठकर अदृश्य हो रही है और नीचे की पंक्तियां आपस में गुड़मुड़ होकर एक जाल-सा बुन रही हैं मैं उन्हें अलग नहीं कर पा रहा हूं। नजर किसी एक पंक्ति पर टिक नहीं पा रही है। पुस्तक एक ओर रख दी। फिर छत की ओर देखने लगा। भई यह क्या ? यह क्या हो रहा है ?......छत टेढ़ी क्यों हो आई है ? "यह मुझे क्या हो रहा है ?" मैंने उठकर मुंह पर ठंडे पानी के छींटे मारे और एक गिलास ठण्डा यख पानी पी गया जो गले को चीरता भीतर तक एक रेखा सी खींचता चला गया। थोड़ी होश तो आई। पर फिर वही हाल। जिस पर लेटा था वह खाट टेढ़ी होती घूमती उड़ती सी नजर आई फिर जैसे मैं उड़नखटोले में उड़ने लगा था। ऊपर से लिहाफ भी खिसकता सा लगा। एक हाथ से खाट और दूसरे हाथ से लिहाफ को जोर से पकड़े मैं 'टेन्स' हुआ पड़ा रहा कि किसी ने किवाड़ खटखटाकर देखा सामने मेहता खड़े मुस्कुरा रहे हैं—"सर, आप स्वस्थ तो हैं न।"

"नहीं भाई, पता नहीं यह क्या हो रहा है, सब कुछ उलट-पलट हो गया है। मेरी खाट तो उड़ रही है यार !! .....लगता है मैं अभी गिर जाऊंगा। क्या बताऊं ? पता नहीं यह सब क्या है ?" मेरी बातें सुनकर वे ठठाकर हंस पड़े।

"सर ! वैसे मजा तो आया कि नहीं।"

बस मेरा माथा ठनका कि जरूर वही दूध में डाली गोली का जादू है।

"अरे भई वह क्या था ? जो दूध में मिलाया था।"

"कुछ खास नहीं सर, बस भांग की जरा सी गोली थी आप ठंड से परेशान थे न ? मेहता ने उत्तर दिया। मैं उसके उत्तर से स्तब्ध रह गया। भांग कभी देखी छुई न थी। अत: उस का जादू नहीं जानता था। एक बार शिवरात्रि के दिन बचपन में, खेल-खेल में एक बार हमारे घर में ठंडाई बनी थी तो बड़े भाई ने उसमें कहीं जरा सी भांग की बुकनी मिला दी थी। कहते हैं मैं सारे दिन हो-हो करके बात-बेबात हंसता-रोता रहा था। पर ठीक से याद नहीं है।

"सर खाना खाकर सो जाएं बहुत मस्ती में सोए पड़े रहेंगे। मेहता ने कहा और अपने साथ आने का संकेत किया।"

"नहीं यार कहीं गिर विर जाऊंगा।" मैंने झिझकते हुए कहा। तो वे हंस पड़े—"अरे साहब ! कुछ नहीं होता, बस मस्ती में रहें।"

खाना खाकर हम लौट आये। मेहता मुझे अपने कमरे तक छोड़ गया था। कपड़े बदल कर लिहाफ ओढ़ कर मैं सोने का उपक्रम करने लगा। आंखों के आगे कितना कुछ तस्वीरों की तरह नाचता थिरकता रहा किसी रील के फीते की तरह। मैं मस्ती में पड़ा उन्हें एक-एक कर अपनी उंगलियों पर लपेटता कब सो गया ? मुझे नहीं मालूम। सुबह उठा तो एकदम ताजादम था। देखा, धूप का टुकड़ा खिड़की के शीशे में से भीतर उतर कर खिड़की के पर्दे पर झिलमिला रहा है। उठकर पर्दा एक ओर सरकाया—उफ् ! क्या दृश्य था ? दूधिया बर्फ की चादर पर चमकीली धूप पसर आई थी। पूरे एक वर्ष पहले की अन्धेरी रात का बूंद-बूंद अंधेरा निथर गया था और नए साल की कोरी कलईदार सुबह की थाली में नई उमंगों का नया शोख सूरज भर आया था लिश्कारे मारता हुआ।

आज भी याद करता हूं तो ज़िन्दगी का वह ठिठुरन भरा टुकड़ा किसी नई सुबह की नई धूप की नर्म गुनगुनी गुदगुदाहट से भर देता है मुझे......। □

याद है अपना वह औघड़पना छुटपन का ...

डा. कामिनी बाली

यदि मनुष्य में भूलने की शक्ति न होती तो उसकी यादों का संग्रहालय उसके शरीर
से भारी होता। इस स्वाभाविक प्रवृति का वरदान पाकर भी मनुष्य दो बातें नहीं भूलता।
एक तो वह जब दूसरे द्वारा आहत हुआ हो, दूसरे जब जाने-अनजाने वह स्वयं किसी के दुःख
का कारण बन गया हो।

उन दिनों में दस वर्ष की रही होऊंगी। पिता जी की नौकरी ऐसी कि हर तीन वर्ष
बाद नया स्टेशन। इस बार हम राजस्थान के कोटा शहर पहुंचे थे। हर बार तबादले की
मेहरबानी से छुट्टियां मनाने का अब के भी अच्छा मौका मिला। मां-बाप घर-गृहस्थी को
व्यवस्थित करने में लग गये और मैं परिचय करने इधर-उधर घूमने लगी। एक सुन्दर
सलोनी चुलबुली बच्ची की मीठी बातें पड़ोसियों को आकर्षित करतीं।

कोटा में पड़ोसियों से गाढ़ी छनने लगी। बच्चे भी बहुत सारे थे आसपास। एक
बंद होती गली में आमने-सामने मकानों की कतार, लगता था एक ही घर का दालान हो।
अंतिम मकान था मिश्रा आंटी का और इधर शुरू में तीसरा घर हमने लिया था किराए पर
और हमारे सामने रहते थे मोटवानी परिवार। लम्बा चौड़ा संयुक्त परिवार था सबसे वृद्ध
मोटवानी साहब अकेले ही थे जो घर से बाहर सोते थे बाकी लोग दिन में तो बाहर
चारपाइयों पर बैठे रहते पर रात में कोई न सोता। बहुत से बच्चे हम उम्र खेला करते,
पर जब मैं वहां पहुंची तो एक गुट सा हो गए बच्चे। मैं दूसरे शहर में नई-नई खेलें सीख
कर आई थी। बच्चों को भी नयापन भाता और मैं उनकी सरगना बन कर खेल खिलाती।
आइसपाइस, चोर सिपाही, ऊंच नीच जैसे खेल वहां पर प्रिय होने लगे। मुझ से उम्र में एक
आध वर्ष बड़े बच्चों पर भी मेरा पूरा रौब रहता। हमेशा कोई नई शरारत की खोज में
रहती है। कई बार कुछ टूट-फूट जाता तो मेरी खूब पिटाई भी होती, परन्तु जिस दिन मेरी
पिटाई होती मोहल्ले में कोई बच्चा खेलता न दिखता।

राजू और मीना मुझसे बड़े थे । मैंने राजू से कहा मुझे साइकिल चलाना सिखा दो । मैं घर से पापा की साइकिल ले आती और राजू सिखाता । तीन चार दिन में ही मैं सीख गई । राजू साइकिल पर चढ़ा देता परन्तु उतरने का अभी अभ्यास कर रही थी, सभी बच्चे पीछे-पीछे भाग रहे थे कि अचानक साइकिल सहित गली में सोए मोटवानी अंकल के ऊपर जा पड़ी । साइकिल उनके बिस्तर में फंस गई और चारपाई के नीचे रखी सुराही टूट गई । अंकल बेचारे घबरा कर चीख रहे थे । उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था । वह हैरान कि आराम से सोए हुए थे, अचानक क्या आ पड़ा । सभी बच्चे भाग गए । मोटवानी जी का पोता भी हममें शामिल था वह पकड़ा गया । खूब पिटाई हुई उसकी और काफी दिन तक हमारे साथ खेलने की मनाही भी रही । उधर भागने से मेरे पांव में मोच आ गई । मैंने तो दूसरे दिन उनसे पांव दिखा कर माफी मांग ली और साइकिल छुड़वा ली ।

इस घटना के बाद कुछ दिन बच्चे गंभीर बने रहे परन्तु फिर वही दुरंगी चाल शुरू हो गई । उन दिनों हम सब भूतों-प्रेतों के बहुत से किस्से सुनते-सुनाते । वैसे भी कोटा में कई पुरानी इमारतों, महलों आदि के कई किस्से भी लोग सुनाते थे। चन्दामामा की कहानियां, विशेषत: बेताल की कथा अदि से भी हम सब बहुत प्रभावित थे । उन दिन अकसर लोग आत्मा को बुलाते और उससे संवाद करते । पता नहीं वास्तविकता क्या थी ? पर बच्चों पर इन सब बातों का जादुई प्रभाव था । हम लोग जैसा सुनते करने का प्रयास करते । मिश्रा आंटी और उनका परिवार कुछ दिनों के लिए बाहर गया था । उनके पिछवाड़े सुनसान जगह हमारा ठिकाना था । जमीन पर वैसे ही निशान लगा हम आत्मा बुलाते । न जाने आती या नहीं । पर बच्चों को विश्वास था कि मैं ऐसा कर लेती हूं । इसी तरह हमने तंत्र-मंत्र की कई छोटी-छोटी चीजें जैसे लाल कलावा, पीला लाल रंग, हलदी, सिंदूर, चावल, टूटे घड़े के टुकड़े, अधजली लकड़ियां, कीलें, हड्डियां, माचिस, सूखा आटा आदि इकट्ठे किए । सब बच्चे अपने-अपने घर से मौका देखकर कुछ न कुछ चुरा लाते । उनके इस्तेमाल के नए-नए तरीके सोचते । हल्दी और लाल रंग घोल कर लोगों के दरवाजों पर निशान बनाते । पर कोई खास प्रभाव न पड़ा । न ही कोई हगामा हुआ । हम बच्चे ही अपने बनाए निशान देखकर डर जाते । कई बार लगता कि हमारे निशानों के ऊपर किसी प्रेतात्मा ने और निशान लगा दिए हैं । इस प्रकार हम अपनी ही दुनिया में खेल करते । किसी को कुछ पता नहीं था । हमने लाल डोरे के साथ हड्डियां बांध कर कील पर लटका दीं । सोचा हर बच्चे के दरवाजे पर लगा देंगे । अभी मिश्रा आंटी के अगले दरवाजे पर ही लगा पाए । बाकी सामान उनके पिछवाड़े पड़ा हुआ था । कुछ चीजें हमें बेकार लगी । उन्हें हमने मिश्रा आंटी के आंगन में फैंक दिया । दीवारों पर हाथ और पैर की हम उल्टी छाप लगाते अर्थात् दाएं की जगह बायां और बाएं की जगह दायां इस तरह बाल बुद्धि में जो भी खुराफात आ सकती थी हम करते । कुछ ही दिनों में हमारे यह खेल पुराना हो गया । वैसे भी वहां का सुनसान डरावना वातावरण हमें उबाने लगा । धीरे-धीरे बच्चों ने इस खेल से उकता कर नए खेल शुरू कर दिये । सारा सामान और योजनाएं अधूरी पड़ी थीं ।

हम सब आइस पाइस खेल रहे थे कि हमने देखा एक टांगा आकर रुका । उत्सुकता से देखा तो मिश्रा जी का परिवार लौट आया था । कोई और मौका होता तो हम ताली

बजा कर शोर मचाते परंतु खेल रहे थे आउट होने के डर से अपने-अपने स्थान पर छिपे रहे। टांगे में से सबसे पहले अंकल उतरे। अभी घर के पास पहुंचे भी न थे कि चीख कर वापिस पलट पड़े घबरा कर बोले। "तांगा पीछे करो कोई उधर नहीं जाएगा।" तांगे को कुछ पीछे किया गया। तांगेवाला उतावला होकर देखने लगा कि क्या हो गया है। बच्चे और आंटी हैरान थे कि क्या बात है। तांगेवाला ज्योंही आगे बढ़ा दृश्य देखकर वह भी घबरा कर बोला।

"पास मत जाना, किसी ने कुछ किया हुआ है।"

अब आंटी उतरी तांगे से और जब उनकी नजर दरवाजे पर पड़ी तो जैसे उन्हें भी काठ मार गया। बेचारी की घिग्घी बंध गई" वो - वो—वो..."बस इतना कह पाई।

तांगे वाले ने स्थिति संभाली। अब तक वह कुछ सामान्य हो चुका था बोला—"घबराने की कोई बात नहीं। लोग देख कर जलते हैं और टूना टोटका करा देते हैं। आप चिंता न करें। अभी मौलवी साहब मस्जिद में ही होंगे मैं उन्हें बुला लाता हूं।" इतना कह कर तांगेवाला तेजी से गली से बाहर निकल गया।

मिश्रा आंटी चीख रही थी—"बेड़ा गरक हो जिसने ये सब किया.. सारे लोग मेरे ही परिवार के पीछे पड़े रहते हैं। मैं देख लूंगी एक-एक को...। कुछ दिन घर से बाहर क्या गए दुश्मनों को आजादी मिल गई। मैं भी देखती हूं.. मेरा भगवान तो है..."। उनके दो लड़के थे—14 वर्ष का सुरेश और 12 वर्ष का मिन्टू। दोनों ही गंभीर प्रकृति के थे। पढ़ने-लिखने वाले और मां-बाप की आज्ञापालन करने वाले। मिश्रा आंटी उन्हें अपनी कड़ी निगरानी में रखतीं। कभी घर से बाहर न निकलने देतीं। बड़े लड़के से पिता को और छोटे वाले को मां से विशेष लगाव था। दोनों सामान्य बच्चों से अलग ही रहते। मेरा उनका स्कूल एक ही था फिर भी अलग-अलग रहते।

सारा मोहल्ला वहां इकट्ठा हो गया। खबर जंगल की आग की तरह फैल गई कि मिश्रा जी के घर पर किसी ने कुछ करवा दिया है। जितने मुंह उतनी बातें हो रही थीं। हर व्यक्ति विशेष टिप्पणी करता। कोई पीछे नहीं रहना चाहता था। मजे की बात ये है कि कोई कहता फलां के साथ ऐसा हुआ है तो उसके घर फलां-फलां मर गए। ऐसे ही कई किस्से लोग सुना रहे थे। किसी ने राय दी घर के पिछले दरवाजे को खुला लिया जाए। लालटेन मंगवा कर पिछवाड़े गए तो वहां का दृश्य देखने लायक था। सुनसान जगह पर लालटेन की रोशनी में चीजें और भी भयानक दिख रही थी। जले लकड़ी के टुकड़े, हड्डियां, रंग, मौली, जमीन पर तंत्रमंत्र के चौखटे, टूटी ईंटों के टुकड़े जैसे कोई अभी कुछ कर रहा हो और इतने लोगों को देख भाग खड़ा हुआ हो।

मामला और भी गंभीर हो गया। मैं डर रही थी कि कहीं कोई बच्चा कुछ बोल पड़ा तो पिटाई होगी। हुआ कुछ उलटा। मां-बाप अपने बच्चों को संभाल रहे थे कि उन्हें न कुछ हो जाए। केवल कुछ ही आदमी और औरतें बाहर थीं। बाकी डर कर अपने-अपने घर में बंद हो गए या वहीं से झांक रहे थे। बच्चे सहम गए थे, पता नहीं पिटाई के डर से या

भूत-प्रेत के डर से, कोई नहीं जान पाया। परन्तु उस रात मुझे बहुत देर तक नींद न आई आज भी याद है मुझे कि मेरा मन होता मैं बाहर जाऊं और सारे सामान की सफाई कर दूं। बड़ी दया आ रही थी। परन्तु पिटाई का डर था। मजा भी आ रहा था—लोगों की राजनीति देख कर। कुछ तो वास्तव में डर गए थे परन्तु कुछ नाटक ज्यादा कर रहे थे। इसी बीच मिश्रा जी को लोगों ने पानी पिलाया, उन्हें आराम से चारपाई बिछाकर बिठाया। एक दो पड़ोसी उनके परिवार के लिए खाने-पीने का प्रबंध करने लगे।

अब तांगे वाले के साथ मौलवी जी आ पहुंचे। उन्होंने हरे से रंग का एक कपड़ा जमीन पर बिछाया, एक आसान सा निकाला जिस पर चांद-तारा बने हुए थे, बिछा कर बैठ गए। उन्होंने लोगों को थोड़ा पीछे हटकर बैठने की हिदायत दी और विशेषज्ञ की भांति दरवाजे का मुआइना किया। कोई बोला पिछवाड़े भी देख लो। मौलवी जी ने उन्हें चुप रहने का इशारा किया। अपने झोले में से कुछ चीज निकाल कर एक कटोरे में जलाई तो चारों ओर धुआं-धुआं फैल गया। अब उन्होंने मन ही मन कुछ मंत्र आदि बोलने शुरू किए। और बोले—

"परिवार को कोई खतम करना चाहता है...पर मेरे होते कामयाब नहीं हो पाएगा। मुझे समय पर बुला लिया...वरना ..मैं सब देख लूंगा...घबराने की कोई बात नहीं... मैं ऐसा कर जाऊंगा कि...फिर हिम्मत नहीं होगी...। यदि मैंने मूठ चला दी तो सात पुश्तें रोती रह जाएंगीं ..."।

मौलवी जी का कार्यक्रम लगभग एक घंटा चला फिर उन्होंने एक थाल में सारा टूना-टोटका संभाला। उस पर कटोरे की राख डाल दी। एक लोटे में पानी मंगवा कर कुछ देर जाप किया और चाबी लेकर उनका घर खोलकर अंदर चले गए। सारे घर में पानी का छिड़काव करके और धुआं फैला कर उन्होंने दरवाजा पूरा खोल दिया। हिदायत दी कि पहले मिश्रा जी खुद प्रवेश करें दाएं पांव से...। फिर सारा परिवार और कुछ पड़ोसी डर-डर के प्रवेश कर रहे थे। पिछले आंगन का भूतिया सामान भी झाड़ू से हटा दिया गया और पिछला दरवाजा खोला गया। वहां अंधेरा ज्यादा था। वातावरण अधिक भयानक लग रहा था। मौलवी जी उसी पानी से दीवार पर लगे हाथ-पैरों के निशान मिटाने लगे। साथ-साथ कुछ बोले भी जा रहे थे इतना सब करने में उन्होंने लगभग 50-60 रुपए नकद और कुछ रुपयों का सामान मंगवाया था। उनके कहने के अनुसार अब कोई डर नहीं फिर भी पांच शुक्रवार मस्जिद में न्याज़ चढ़ाने का निर्देश दे गए।

जैसे-तैसे रात बीती। सुबह होते ही मिश्रा आंटी मंदिर जा पहुंची। पुजारी ने जब सारी कथा सुनी तो कुछ नाराज से हुए और बोले हिन्दू रीति से कुछ नहीं हुआ। यदि किसी हिन्दू की प्रेतात्मा होगी तो परेशान करती रहेगी। मरता क्या न करता। वैसे भी सारे वहमों की दवा हो जानी चाहिए। सुबह आठ बजे पुजारी ने घर का शुद्धीकरण प्रारम्भ किया। उन्होंने चावल, आटा, पांच फल, पान सुपारी, धूप, मिठाई आदि-आदि की सूची थमा दी। तत्काल सामान आ गया। अनुष्ठान शुरू हुआ। मौलवी जी की तरह इन्होंने धूप जलाया। फर्श पर कुछ चौखटे बनाए, उन पर फूल, पान, सुपारी आदि चढ़ाई

और आंटो को बिठा कर काफी देर तक पूजा कराई । उनकी राय में किसी ने जमीन-जायदाद हड़पने के लिए यह सब किया है । उन्होंने छत पर भी कुछ तलाश करते हुए कहा यहां ताबीज होना चाहिए । फिर पता नहीं कहां से उनके हाथ में एक रुद्राक्ष और ताबीज आ गए । लोगों का विश्वास और सुदृढ़ हो गया । इस प्रकार पंडित जी और मौलवी जी के कार्यक्रम में उनका लगभग ढाई तीन सौ रुपये खर्च हो गए ।

हम सब बच्चे तो मानो गूंगे हो गए थे । हमारी पुस्तक का यह पन्ना ही फट गया था जैसे । सभी ने नोट किया कि बच्चे बहुत सहम गए हैं । कोई नहीं जान पाया कि हम क्यों डर रहे थे भूतप्रेत से या डंडों की मार से । आज भी सोचती हूं तो हंसी आती है अंधविश्वासों के अंधे कुएं में गिरे हम लोग किस प्रकार वहमों के शिकार हो जाते हैं । स्थिति ऐसी हो गई कि हम बच्चों को भी महसूस होने लगा कि यह सचमुच कोई भुतहा खेल है । किसी को पता न लग जाए सो कोई इस बारे में विवाद भी न कर सकता था । आज तक मैंने यह बात किसी को नहीं बतायी । हालांकि कोटा शहर कई वर्षों से छूट चुका है । फिर भी मन में आज भी डर है कि यदि वह कहीं जान गया तो अपना वह छुटपन का औघड़पना जाने क्या रंग लाये ?

□

कहानियां

रोज़ी-रोटी

□ हरदर्शन सहगल

लंबा रास्ता था, जिसे मैं पैदल तय कर रहा था। अब दूर से मुझे जो दृश्य दिखाई दिया, उससे राहत मिली कि मंज़िल के करीब आने लगा हूं। सामने बहुत भीड़ थी। सुबह सवेरे इतने सारे लोगों की एक साथ उपस्थिति यही दर्शा रही थी कि भक्तजन हैं। मंदिर साथ ही होगा।

दरअसल मुझे मंदिर नहीं जाना था। मुझे तो सुन्दर जी का मकान ढूंढ निकालना था। हसन भाई ने जिस तरह से रास्ता समझाया था उसके मुताबिक पहले मंदिर मिलेगा। फिर मुझे मंदिर से आगे सीधा बढ़ना होगा। जब तीसरी गली आए तो उसमें मुड़ना होगा। तब कोई भी मुझे सुन्दर जी का घर बता देगा।

मैं जहां पर भी होता हूं अक्सर अपने से पूछता हूं कि मैं यहां पर क्यों हूं ? यही प्रश्न-राग जब तब लंबा खिंचने लगता है तो मैं यहां तक पूछने लगता हूं कि मैं इस संसार में ही क्यों हूं ?

यही प्रश्न मैं, केशव चन्द्र जी की मैरिज एनवर्सरी पार्टी में अपने से पूछ रहा था कि यहां, जहां पर न मेरी कोई जान-पहचान है ; न कोई औक़ात। मैं यहां पर क्यों हूं। क्यों हसन भाई मुझे यहां खींच लाये ?

औरतें और मर्द फिल्मी दृश्यों की नकल करने की कोशिश में फूहड़ तरीके से नाच गा रहे थे। झुंड बनाकर आपस में चुहल बाज़ी, और घटिया मज़ाक कर रहे थे। मैं सबसे कटा, अलग-थलग एक कोने में जैसे दुबका खड़ा था।

कुछ देर बाद हसन भाई मुझे कंधे से आहिस्ता से पकड़ कर एक तरफ ले गये। तब वहीं सुन्दर जी मुझे बड़े तपाक से मिले थे। मेरा आगा पीछा पूछा था—और फिर जैसे कोई नतीजा निकालते हुए जोशीले स्वर में बोले थे—ओह माई गॉड ! तब तो तुम हमारी

मिसेस के भांजे लगे। दूर के ही सही। पर भांजे हो। ऊपर से हसन भाई की सिफारिश। किसी भी दिन आकर हम से मिलो।

तब उस दिन मैं थोड़ा आश्वस्त हुआ था कि मैं वहां पर क्यों था। मैं भीड़ के नज़दीक पहुंचा, तो वहां पर कोई मंदिर दिखाई नहीं दिया। एक आदमी, सबसे अलग यूं ही गफलत में आसमान की जानिब निगाहें उठाए खड़ा था। मैंने उसी से पूछा—क्या यहां पर कोई मंदिर नहीं है?

उस पतले आदमी ने, जिस के कंधे और गालों की हड्डियां साफ दिखाई दे रही थीं, एक उखड़ी हुई सांस ली। फिर न जाने कैसे ज़बान में जोश भरते हुए उत्तर दिया—हां, हां भाई जी! सामने ही तो है। इससे बड़ा भला कौन सा मंदिर होगा।

ज़रा सा आगे सरका तो एक भभका मेरी नाक में जा घुसा। समझ गया; यहां कौन सा मंदिर है। 'बार' में सुबह ही से समर्पण भाव से आने वाले भक्तों का रेला-मेला। इसी प्रकार, थोड़ा आगे बढ़ने पर लाटरी बाज़ों का हुजूम था। यहां पर भी वैसा ही जोश हिलोरें मार रहा था।

अंतत: रास्ता भटकते और पूछते-पुछाते सुन्दर जी के ठिकाने पर जा पहुंचा। कॉल बैल बजाई।

दरवाज़ा एक महिला ने खोला। उसकी खाल खुश्क थी। और सिर में एकाध ही कोई काला बाल नज़र आता था।

मैंने बताया—मैं विशाल हूं। शायद आप ही।

—हां, हां बैठो। उन्होंने इधर उधर देखा।

—यह सुंदर जी का ही घर है न!

—हां, हां, नहा रहे हैं। अभी आते हैं।

—आपको बताया तो होगा! उस दिन एक पार्टी में मिले थे। आप ही शायद मेरी मौसी लगती हैं।

—हां, हां बताते रहते हैं। आप किधर रहते हो?

—मुहल्ला चांद खां। यहां से काफी दूर पड़ता है। आप आइएगा।

—हमें इस शहर के बारे में कुछ पता नहीं। यहां ट्रांस्फर पर आते ही अपनी उलझनों में लगे रहे। इस से तो यह अफसरी नहीं मिलती।

—उनकी क्या परेशानी हो सकती है मैं इसकी तरफ ध्यान नहीं दे पाया और अपनी धुन में बोल गया—अच्छा अफसरी!—कौन से दफ्तर में? तब तो कुछ काम बन सकता है।

—अरे कहां, वे धीरे-धीरे खुलने लगीं—छ: महीने पहले आबकारी से रिटायर कर दिए गए तो बोले—फिर से बेरोजगार हो गया हूं।

—क्यों ऐसा क्यों ? आपको भला क्या कमी हो सकती है ?

—यही तो बात है। चाहते तो औरों की तरह लाखों बना लेते। एक से एक अच्छी जगह, सीटों पर काम किया। मगर अपने सिद्धांतों को दुलारते रहे। तीनों ही लड़कियों को खूब पढ़ाया-लिखाया। पर किसी की सिफारिश नहीं की। अब कहते हैं करूंगा। वाह! नौकरी छूट जाने के बाद! यह कौन-सा तरीका है? अब नौकरी भी लगवाएंगे और शादियां भी करेंगे।

मैं भी एक के बाद दूसरा प्रश्न करने लगा और उत्तर सुन-सुन कर उलझने लगा। लड़कियां किन्हीं प्राइवेट स्कूलों में मामूली पैसों पर काम कर रही हैं। इससे क्या बनता है?

बातें चल रही थीं कि मौसा जी मेरे पीछे आ खड़े हुए - यह तो यूं ही बोलती रहती है। चलो मेरे साथ। देखना अब, हमारे क्या ठाठ हैं। सच तो यह है कि सर्विस में हम जैसों के पास कुछ नहीं होता।

मौसी जी नाश्ता बनाने लगीं तो बोले—रहने दो। वहीं कहीं कर लेंगे। देर हो रही है। सब इंतज़ार कर रहे होंगे। कई रोज़ से पहुंच नहीं पाया।

—तबीयत ठीक न हो तो कोई क्या करे। आज और रैस्ट कर लो। वे शिथिल स्वर में कहती रह गईं। बिना मौसी की बातों की तरफ ध्यान दिए मौसा जी, मुझे लिये बाहर निकल पड़े।

रास्ते में मैं सोचने लगा, अब इस उम्र में मौसा जी ने कौन सा काम पकड़ रखा है। मुझे अपने कौन से ठाठ दिखाने ले जा रहे हैं। उनके "ठाठ" बोलने पर मुझे कुछ ओढ़ा हुआ सा उत्साह लगा। "ठाठ" के अंदर की परतों में मुझे हताशा का आभास हुआ। मौसी जी की ज़बान में तो हताशा स्पष्ट थी। पर स्थिति दोनों की समान लगती थी। लंबे पतले सफेद बालों वाले, स्त्री-पुरुष। शायद मेरी ही तरह समय के साथ जूझ रहे थे। तन मन से समान।

फिर भी मेरी परेशानी, मेरी परेशानी थी। पढ़ लिखकर वर्षों से बारोज़गार न बन पाने की टूटन मेरे दिलो-दिमाग का हिस्सा बन गई थी। इसी तल्खी के आलम में, मैं अंदर ही अंदर तिलमिला उठा, 'यह बुड्ढा अब मुझे क्या काम दिलवाएगा?' किन्तु ऐसी सोच पर मुझे तत्काल अपने पर खीझ और शर्मिन्दगी हुई। आदरयुक्त स्वर में बोल उठा—मेरे पहुंचने में थोड़ी देर और हो जाती तो आप घर से निकल चुके होते। मेरे भाग्य अच्छे थे। आप मिल गए। दरअसल...इतना कहने के बाद मैं ज़रा सा अटका और फिर जल्दी-जल्दी रास्ते के सब पड़ावों का ज़िक्र करने लगा।

—अच्छा, वे बोले, तब तो मैं यूं ही तुम को मिल गया होता।

—मैं आपका मतलब नहीं समझा।

—अपन उधर ही तो चल रहे हैं।

—किधर? मैंने जिज्ञासा प्रकट की।

या तो उन्होंने सुना नहीं, या जान कर टाल गए। हवा फर-फर बहने लगी थी। वे भी उसी दिशा में अपने शरीर को गति देकर ज़रा और तेज़ी से चलने लगे थे। मैं भी अपने कदम उनके बराबर रखता रहा। फिर संकोच छोड़कर पूछ ही बैठा—मेरे लिए कुछ हुआ?

—हवा में उड़ते अपने सफेद बालों को हाथ में लेते हुए मौसा जी ने फिर से जोश से कहा—देखते चलो।

"क्या रहस्य है?" मैंने सोचा और फिर से चुपचाप उनके साथ चलता गया।

मंदिर के काफी बाद वही मोड़ आया, जहां लाटरी के टिकटों के वारे न्यारे हो रहे थे।

'सुंदर जी, सुंदर जी" हवा में कई स्वर एक साथ सुनाई दिए। जैसे मुख्य अतिथि या निरीक्षक के आने पर कार्यकर्त्ता/कर्मचारी एक-दूसरे को सचेत करते हैं। देखते ही देखते कई लोग होड़ की मुद्रा में एक-दूसरे से आगे बढ़ आए। कुछ उन से हाथ मिलाने लगे। दो-तीन बुज़ुर्ग लोगों ने उन्हें गले लगाया। इसी प्रकार कई युवक उनके पांव छूने लगे।

सभी वारी-वारी से उन्हें रुपए गिनवा रहे थे—'यह रहा चार रोज़ का हिसाब। और कोई सेवा?"

—इस लड़के को काम चाहिए। उन्होंने मेरी ओर इशारा किया।

"मेरे पास। मेरे पास" की रट लग गई। जितने रुपए आप जायज़ समझें दे दिया करेंगे। आप तो जानते हैं हमारे पास और भी बहुत से काम हैं।

—ठीक है। अभी चलते हैं। कहते हुए उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा और हम आगे बढ़ गए।

रास्ता वही था जिधर से मैं आया था।

'बार' आने पर वे वहां भी रुके। वहां पर भी वही आलम। सुंदर जी के सम्मान में बहुत सारे सिर झुक रहे थे। उन्होंने भी सुंदर जी को रुपए दिए। इन लोगों ने भी मुझे काम देने पक्का आश्वासन दिया कि जब जी चाहे आ जाए। दरवाज़े खुले हैं।

परन्तु मैंने ऐसे लोगों के पास काम करने से साफ इन्कार कर दिया—इससे तो आप मुझे कहीं पर भी क्लास फॉर्थ में भर्ती करवा दें।

—मुझे ही देखो मैंने क्लास वन अफसरी में क्या पा लिया। कुछ बातें आदमी के जेहन में बहुत बाद में आती हैं। जितनी चीज़ों पर प्रतिबंध लगाता है—वही, कई लोगों की आमदनी का ज़रिया बनती है। सर्विस में रहते हम इस सच को झुठलाते रहे।

अपने ही ख्यालों में, वे जैसे मुझे नहीं, अपने ही को भाषण पिला रहे थे।

मन उदास और उचाट हो चला था। मौके की तलाश में था कि खिसक लूं। तभी हमारी बगल में एक कार रुकने की आवाज़ के साथ ही अपनत्व भरा स्वर सुनाई दिया—बैठिए, कार से निकला हाथ, उनके कंधे पर था।

हम दोनों कार में बैठ गए। सुंदर जी ने उनका परिचय दिया - बहुत बड़े रेस्टोरेंट के प्रोपराइटर हैं। हम इन्हें शाह जी कहते हैं। मेरा परिचय देते न देते, रेस्टोरेंट आ गया। उसी रेस्टोरेंट के सामने "यंग क्लब" का एक मटमैला बोर्ड झूल रहा था। शाह जी की कार से सुंदर जी को उतरते देख, एक लड़का इधर ही को लपका—शुक्र है सर, आप आ गए। यहां रेड पड़ गई है।

—चलो देखता हूं। चार रोज़ से मेरे न आने का यह नतीजा है। शाह जी आप इसे बिठाइए। अभी मामला सैट राइट करके हाज़िर हुआ।

यह कहते हुए सुंदर जी तत्परता से यंग क्लब की तरफ चले गये।

शाह जी ने मुझे एक केबिन में बिठाया। खुद पानी लेकर आए और मेरे सामने बैठ गए। अपने और सुंदर जी के पुराने संबंधों की चर्चा छेड़ दी। फिर सुंदर जी के बारे में बताने लगे। निहायत ईमानदारी से नौकरी करते रहे। न खाएं। न खाने दें। कहते, रिटायर होने पर असली कमाई से इतना तो मिल ही जाएगा जिससे परिवार किसी तरह संभलता रहेगा। मगर साथियों को लगता उनके रिटायर होने तक तो उन लोगों का काफी नुकसान हो चुकेगा। इसलिए ऐसी रचना रची कि इन्हें नौकरी से बरतरफ होना पड़ा। नौकरी छूटी सो अलग। ग्रेचुटी वगैरह-वगैरह और रुक गई। चार महीने तक तो गुमसुम पड़े रहे। क्या करें। क्या न करें। कोर्ट कौन से जल्दी फैसले देता है। हम लोगों के कहने पर अब यह फील्ड वर्क करने लगे...।

मैं अपने को रोक नहीं पाया। शाह जी को बीच में टोकते हुए, बोल पड़ा—मुझे तो मौसा जी का व्यवहार कुछ असामान्य सा लगता है।

—ऐसा तो नहीं है, शाह जी फिर कहने लगे, अगर किसी को ऐसा लगा हो तो कौन-सी बड़ी बात है। ज़रा सोचो जिस शख्स ने जिन कुर्सियों पर बैठ कर अपने लिए कुछ न बनाया हो, अब उन्हीं कुर्सियों के माध्यम से इस परेशानी की हालत में, घर वालों के साथ-साथ दूसरों का भी पेट भर रहा है। कानूनी दांव-पेच की बारीकियां इससे क्या छिपी हैं। किसी को परेशान नहीं देख सकता। किसी को भतीजा किसी को साला या भांजा बना कर कोई न कोई काम दिलवाने की फिक्र करता रहता है। तुम भी शायद ..

मैंने घड़ी पर निगाह डालते हुए शाह जी का वाक्य काट दिया—हां, हां, पर अभी किसी को टाइम दे रखा है। कह दीजिएगा। फिर आऊंगा। सामने का क्लब शायद जुआ घर है।

—हां लोग-बाग ज़रा शुग़ल कर लेते हैं कई तरह के खेल हैं। तुम बैठो तो, अभी आते होंगे।

—उधर ही देख लूंगा, कहता हुआ—मैं बाहर आकर एक दीवार के कोने में छिप गया। सामने से वे आ रहे थे। साथ में कोई वर्दीधारी था ! नज़दीक की झाड़ी के पीछे

आकर दोनों रुक गए। उन दोनों की धीमी आवाजें किसी तरह मेरे कानों की गिरिफ्त में आ रही थीं।

—ऐसे कैसे काम चलेगा ?

—हमें भी तो कुछ बचना चाहिए, वरना...।

—ठीक है, मगर...आजकल के हालात आपसे छिपे नहीं हैं। 'ऊपर तक' पहुंचता है।

—भाई साहब, फिर भी इतनी डीमांड मत कीजिए कि, सबके सब बेरोज़गार हो जाएं। आवाज में कंपन और गिड़गिड़ाहट थी।

मैं बड़ी सफाई से छिटक कर दूर जा पहुंचा। एक बार मुड़ कर देखा, वे रेस्टोरेंट की तरफ बढ़ रहे हैं। तेज हवा के झोंकों से उनके सफेद बाल उलझ रहे हैं। □

आग्रह !

वार्षिक सदस्यता शुल्क निम्न पते पर 10 रु० डिमाण्ड ड्राफ्ट/धनादेश/पोस्टल आर्डर से भेज कर समय भी बचाएं : असुविधा भी।

पता :

एडीशनल सेक्रेटरी शीराज़ा हिन्दी, जे० एंड० के० अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर एंड लेंग्वेजिज़, जम्मू-180001।

○○

प्रकाशित कृति को समीक्षार्थ भेजते समय कृपया दो प्रतियां भेजना न भूलें।

—सं०

अब, सो जा निक्कू ..

☐ जसविंदर शर्मा

तड़ा...ा क... साहब ने एक भरपूर थप्पड़ निक्कू को जड़ दिया था। निक्कू का चेहरा झनझना उठा। इतनी करारी दर्द हुई मानो किसी ने जान ही ले ली हो। साहब चिल्ला रहे थे, "दिखता नहीं तुझे, टेबुल कितना गन्दा है। क्या करता है दिन भर, बास्टर्ड।"

निक्कू भावहीन, चुपचाप फटी फटी निगाहों से देखे जा रहा था मानो ये शब्द उस के लिए प्रयोग नहीं किए जा रहे थे। अब तो उसे आदत पड़ गई थी हर समय अपमानित होने तथा मार खाते रहने की।

निक्कू को यूं बौड़म की तरह खड़े देख कर साहब का गुस्सा और बढ़ता जा रहा था। वह चीखे, "उल्लू, अब पागलों की तरह यहीं खड़ा रहेगा क्या। जा, जाकर कोई कपड़ा ले आ और साफ कर यहां से।"

फर्श पर लेटे निक्कू को यह घटना बार बार याद आ रही थी। उसके गाल पर साहब की उंगलियों के निशान उभर आये थे। निक्कू उन्हें सहलाता तो और अधिक दर्द होता। उसकी स्मृति में इस तरह की सैंकड़ों वारदातें दर्ज थीं। कई बार वह अपने आपको बेकसूर साबित करने के लिए चीखता भी था मगर उसके चीखने का परिणाम बहुत ही भयानक होता था। साहब उस पर जल्लादों की तरह पिल पड़ते थे। नौकरों के नसीब में तो चुप रहना ही लिखा है, कसूर हो तब भी, न कसर हो तब भी। जरा-सा बोले नहीं कि बिजली टूट कर गिरती है, कोहराम मच जाता है।

इतनी बेरहमी से तो उसे कभी उसके सौतेले बाप ने नहीं पीटा था। और मां, हालांकि वह सगी मां नहीं थी फिर भी आज तक कभी उसने निक्कू को मारना तो दूर की बात, कभी

झिड़कती भी नहीं थी। बस कभी ध्यान नहीं किया उस का। अजीब सा, नीरस सा नाता था उन दोनों का।

तीन बरस का था निक्कू जब उस का अपना बाप गुजर गया था। फौज में था, लोग बताते हैं कि वह लांगरी था—पेट में कोई खराबी हो गई थी उस के। अचानक एक दिन उस के मरने की खबर से गांव वाले बुरी तरह चौंक गए थे। हालांकि निक्कू का बाप दो लड़ाइयों में हिस्सा ले चुका था लेकिन तकदीर में यूं मरना लिखा था।

निक्कू था ही निरा बदकिस्मत। मां पहले से ही सौतेली थी। असली मां तो इस निगोड़े निक्कू को जन्म देते समय ही चल बसी थी। उस का बाप उसके लिए दूसरी मां ब्याह लाया था। उस से भी एक बच्चे का जन्म हुआ था।

निक्कू के बाप के मरने के बाद उसकी सौतेली मां को कुछ रुपये मिले थे और विधवा पेंशन भी लगी। कुछेक पैसे निक्कू के कारण अलग से मिलते थे। शुरू के तीन चार बरसों तक निक्कू की काफी कद्र होती थी। हर महीने की तीन चार तारीख को सज धज कर वह भी मां के साथ शहर जाता था। मां उसे गर्म गर्म जलेबी लेकर देती थी और वह पेट भर खाता कभी कभी मां उसे कैनवास के जूते या खद्दर का कुर्ता पेजामा खरीद देती।

इधर धीरे धीरे मां के रुख में बदलाव आता जा रहा था। पता नहीं निक्कू की मां कब पेंशन ले आती थी। वह हर समय काम में जुटा रहता। कभी छोटू को गोदी उठाए रखता कभी गोबर इकट्ठा करके उपले थापता रहता।

फिर निक्कू को गांव में ही सूबेदार के यहां हाली (बंधक मजदूर) रखवा दिया गया। मां को साल बाद पांच मन अनाज मिल जाता था। निक्कू के लिए वे बहुत ही कष्ट भरे दिन थे। सुबह से शाम तक खेतों में ही खपना पड़ता था उसे। घास काटना, चारा कटाई, गोबर, खेत जोतना, पशु चराना आदि दर्जनों काम निक्कू, खाने को वही रूखी-सूखी, जो सूबेदार के घर बच जाती। हां उसका सौतेला बाप कभी कभी उसे अठन्नी देता था टाफियां खरीदने के लिए।

मां जब निक्कू के सौतेले बाप के साथ रहने लगी तो निक्कू के लिए अपना घर बिल्कुल पराया हो गया। अब न मां की आंखों में कोई स्नेह था न बाप को निक्कू की चाह या परवाह थी। बिल्कुल औतर (अनाथ) हो गया था निक्कू।

कभी कभार निक्कू घर जाता इसलिए कि प्यार के दो शब्द या कुछ अच्छा खाने पीने को मिले मगर इस के बजाय उसे उपेक्षा या डांट-डपट ही मिलती या कोई न कोई काम करने को बोला जाता।

दूर के रिश्ते में चाचा ने जब निक्कू को यहां शहर में एक हलवाई के पास रखवाया तो शुरू शुरू में निक्कू बहुत खुश था कि चलो, गांव के हल, गोबर और पशुओं की नरक भरी जिन्दगी से पीछा तो छूटा।

लेकिन निक्कू था निरा गंवार। अलसाया-सुस्ताया सा गिलास प्लेट उठाता, धीरे धीरे बर्तन धोता। मेज पर आहिस्ता आहिस्ता कपड़ा मारता हुआ ग्राहकों की तरफ एकटक

देखता रहता, यह सब देखकर हलवाई का पारा चढ़ जाता। खूब डांट पड़ती निक्कू को, लानत मलानत होती उसकी। निक्कू का आगे-पीछे कौन था जिसके बारे गाली सुनकर उसे बुरा लगता।

हलवाई के यहां निक्कू को खाने पीने की बड़ी मौज थी। फिर इस साहब की नजर पड़ी निक्कू पर। एक दिन होटल से कुछ खरीदने आये थे। दूसरे दिन पास बुला कर पूछने लगे, "मेरे घर नौकरी करोगे, सौ रुपये महीने दूंगा, रोटी कपड़ा सो अलग।"

सौ रुपये का नाम सुनते निक्कू की आंखें फटी की फटी रह गईं। फिर कोठी में रहना, साफ सुथरा काम। यहां तो रात को चूहे बिस्तर पर दौड़ते हैं। कहां हलवाई उसे पचास रुपये महीने बाद देता है वह भी उसका दुष्ट बाप बटोर कर ले जाता है।

निक्कू अब भी गांव जाता था मगर साल में एकाध बार ही। वहीं शहर से उसका बाप हर महीने उसका सारा हिसाब किताब ले जाता था। अगर कुछ पैसे कहीं से बचाकर निक्कू रख भी लेता तो वही दूर का चाचा बहाने से उधार मांग कर या कोई चीज देकर बहला फुसला कर झटक लेता था।

दिन भर तो निक्कू कछुए की रफ्तार से घर के पोंछे, झाड़ू, बर्तन, कपड़े, चाय नाश्ता या अन्य छोटे मोटे कामों में जुटा रहता। रात थक हार कर पता नहीं कब फर्श पर चटाई बिछा कर बेसुध सो जाता था।

लेकिन आज साहब से भरपूर थप्पड़ खाने के बाद उसकी आंखों में नींद नहीं थी। वह एक टक छत की तरफ देखे जा रहा था। सगी मां की तो कोई स्मृति थी ही नहीं, सौतेली मां का चेहरा भी भूलता जा रहा था निक्कू। और वह हरामी सौतेला बाप, वह तो सिर्फ पैसों का यार था।

जब कभी निक्कू को बहुत ज्यादा मार पड़ती तो पता नहीं उस की मोटी, सुस्त बुद्धि कैसे इतनी संवेदनशील हो जाती थी। आज अपने सूजे हुए गाल सहलाते हुए उसे कभी साथ खेलने वाले गांव के बच्चे। सभी अक्स इतने धुंधले दिखाई देने लगते थे कि बार-बार याद करने पर भी निक्कू को याद न आता कि असली चेहरा किसका है।

आंखों में कोई आंसू नहीं थे। एक गहरा दर्द उसे बेचैन करता जा रहा था, अजीब सी घुटन, छटपटाहट थी आज उसे। यूं ही भावहीन, उखड़ा सा करवटें बदल रहा था निक्कू। कौन था उसका अपना जो सिर पर हाथ फिरा कर कहता, "सो जा निक्कू, सो जा। मैं हूं न तेरे पास।" □

किताबें

चर्चित पुस्तक : ठंडा सूरज (कविता संकलन).
राज पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली,
मूल्य : 60 रुपये ।

ठंडे सूरज' की तीखी-ठंडी तपिश के बीच से गुज़रते हुए

□ रामकुमार आत्रेय

'ठंडा सूरज' कविता-संकलन पर विचार करते समय मुझे 'हंस' के सम्पादक और प्रख्यात कथाकार—चिन्तक राजेन्द्र यादव की इस उक्ति का स्मरण हो आया कि—'आज की कविता कवियों का आपसी कूट-संवाद है।'' आजकल पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली अधिसंख्य कविताओं को पढ़ और समझ कर इस उक्ति से प्रायः असहमत नहीं हुआ जा सकता। कई बार तो कविता के नाम पर प्रकाशित रचना को पढ़कर ऐसा लगने लगता है कि पढ़ी जाने वाली रचना वास्तव में कोई रचना है भी या नहीं या कि किसी मनचले शब्दों के जादूगर ने व्यर्थ में ही शब्दों का ताना-बाना बुन दिया जिस का न कोई आदि है, न कोई अन्त। यही कारण है कि अधिकतर पाठक कविताओं पर उपेक्षा भरी फिसलती-सी दृष्टि डाल कर पत्र-पत्रिका पृष्ठ उलट देने में ही अपना भला समझते हैं। आठवें दशक के सशक्त कवि विनोद दास को 'वर्णमाला से बाहर' नामक अपने कविता-संग्रह में सम्भवतः इसी लिए कहना पड़ा है—''एक युवा कवि हताश था। कोई नहीं सुनता कविता/कवि मित्र भी नहीं। कोई किसी की नहीं सुनता। पूरी सभ्यता जैसे बहरी हो गई है।''

कविता के लिए इतनी अधिक अप्रिय परिस्थिति को जन्म देने के लिए सर्वप्रथम स्वयं कविगण ही उत्तरदायी हैं। उन्होंने कविता को अति आधुनिक बनाने की ललक में तथा पाश्चात्य कविता की अन्धाधुन्ध नकल करने की प्रवृत्ति की वजह से कविता को साधारण जन मानस से कट कर दूर हो जाने के लिए विवश कर दिया। अप्रचलित, दुरूह एवं मुर्दा

बिम्बों की संरचना एवं भाषा का बनावटीपन कविता को अपठनीय बना देता है। रही-सही कमी को पूरा कर दिया बेयर्ड के वुद्धू बक्से (टेलीवीजन) द्वारा दिन-रात परोसी जा रही अश्लील एवं अप्राकृतिक मगर कर्णप्रिय संगीत से सजी सामग्री ने। जिस की वजह से कविता आज सचमुच में ही अस्पृश्य बन कर रह गई।

ऐसे में 'ठंडा सूरज' को पढ़ना ज्येष्ठ मास की झुलसाती-सनसनाती लूओं के बीच शीतल समीर के एक झोंके का सुखद स्पर्श प्राप्त करना है। जलहीन मरु प्रांतर में भटकते यात्री को प्यास से खुश्क हो आए गले को जैसे एक घूंट प्राणदायी जल का उपलब्ध हो जाना है। सीधी-सादी, सच्ची और आडम्बरहीन कविताएं। यदि आप पुस्तक को पढ़कर देखेंगे तो आपको मेरी यह टिप्पणी अतिशयोक्ति नहीं लगेगी। मैं यह कहने का दुस्साहस कभी नहीं करूंगा इस संकलन की कविताएं काव्य शास्त्री के मानदण्डों के अनुसार उत्कृष्ट कविताएं हैं लेकिन एक अच्छी कविता लिखने की बेहद ईमानदार कोशिश जरूर हैं।

दूसरों के कष्टों को अभिव्यक्ति देने के लिये जरूरी है कि उस कष्ट को मन-मस्तिष्क के स्तर पर पहले स्वयं भोगा जाए। ठंडे सूरज का कवि वातानुकूलित भवन में लगी आराम-दायक शैया पर अधलेटा होकर मजदूरों के दर्द को सतही अभिव्यक्ति नहीं देता बल्कि स्वयं को उन्हीं का एक अटूट हिस्सा बना लेता है—"कविता के लिए। जमीन की तलाश में। पाता हूं अपने आपको। गंदी बस्तियों। झोंपड़ियों। कारखानों। निर्माणाधीन अट्टालिकाओं में। कार्यरत मजदूर-मजदूरिनों के बीच। पिचके गालों और फूले पेटों वाली मजदूरिनें। जिनके अध-नंगे बच्चे। आवारा कुत्तों की भांति। रोटी की गंध सूंघते। कूड़े-कचरे की जूठन के टुकड़ों पर झपटने लगते हैं।" (कविता-पृष्ठ 23)

कवि किसी भी राजनीतिक दल का सदस्य न होते हुए भी वामपंथी विचारधारा से प्रभावित है। हर सच्चा रचनाकार अपने आप में वामपंथी होता है क्योंकि सामान्य आदमी के दुख-दर्द से वह मुंह मोड़ ही नहीं सकता। आम आदमी के दुख, अभाव अपमान व पीड़ाएं उसकी अपनी पीड़ाएं होती हैं। इस दृष्टि से नरेश 'उदास' सही मायनों में एक जनकवि, जनता का अपना कवि है। उसे दलित महिला कस्तूरी का बच्चा सूरज जोकि सामाजिक न्याय के अभाव में बीमारी की हालत में दम तोड़ने पर मजबूर है, 'सूरज' नामक कविता (पृष्ठ-16) लिखने पर विवश करता है। कविता को पढ़कर कस्तूरी का दर्द से बिलखना पाठक के कानों में पिघला शीशा बन कर उतर जाता है। 'शब्दों के अर्थ' (पृष्ठ-9) नामक कविता में ध्वस्त सपनों की दुर्गन्ध नये स्वप्नों को अंकुरित होने से नहीं रोक पा रही है, जहां एक बच्चा 'अक्षरमाला' का ज्ञान प्राप्त करते हुए एक पूरा स्वप्नलोक जी रहा होता है और पिता अपने आपको 'घर' के स्थान पर बिखरे हुए मलबे का मालिक बना पाता है—"पर बच्चा 'घ' से। घर बनाना चाहता है। और मैं घर की कल्पना ही नहीं कर पाता। घर के नाम पर टूटी छत। सीलन भरी गंध लिए। जर्जर दीवारें उभरती हैं।"

संकलन की एक बहुत अच्छी कविता है—टोपी। कविता (पृष्ठ-25) में प्रतीकात्मक शब्दों के माध्यम से सिद्धांतहीन-अवसरवादी राजनीति की विद्रूपता का यथार्थ चित्रण मिलता

है—"टोपियों की बाढ़-सी आ गई है। बोली लगने लगी है। नीलामी हो रही है। कौन/कितने दाम दे सकता है। सब अपनी-अपनी टोपियां/सिर पर बिठा रहे हैं। टोपी का चमत्कार बताता हूं। इसके फायदे गिनवाता हूं। सिर पर पहनो तो संसार बदल जाए। सब गोरा-काला छुप जाए।"

कवि के लिए औरत (पृष्ठ-27) मात्र मन बहलाव करने वाली गुड़िया नहीं है बल्कि पुरुष की उन्नति के लिये बलिदान देती, कंधे से कंधा मिलाकर उसका साथ देती, अपनी जिन्दगी का कण-कण उंड़ेलती एक जीवन-संगिनी है। मोची (पृष्ठ-29) कविता में मोची की मुखरता से उत्पन्न आनन्द आप भूल नहीं पाएंगे। देखिये—"यह तो किसी/क्लर्क सरीखे का जूता है। जो अपनी सूरत बिगाड़ रहा है। असलियत को मिटा रहा है। इस जूते को समझायें इसकी असलियत बताएं। मेरी जान छुड़ाएं/मैंने कहा न, हुजूर। मैं तो जूता बनाता हूं। सब को जूतों से ही पहचानता हूं।"

कवि ने बच्चों को अपनी कई कविताओं का केन्द्र बनाया है। बच्चे और पेड़ उसके लिए सबसे प्यारी चीजें हैं। बच्चों की दुरावस्था को देखकर वह बेहद दुखी है क्योंकि कितने ही बच्चे आज बाल श्रमिक बन कर अपना शोषण करवाने पर विवश हैं और शोषकों के इशारों पर बन्दर की तरह नाच रहे हैं।

कवि ने समाज के हर क्षेत्र में व्याप्त विषमता को छुआ है। कभी वह अभिनेता की तरह नाई—(नाई कहता है—पृष्ठ 42, धोबी (पृष्ठ-40) बनता है तो कभी—सेवकराम जी (पृष्ठ-71) बनकर एक सच्चे अध्यापक की दारुण दशा का चित्रण करता है। अपने देश, अपने समाज में जीते-भोगते उस की दृष्टि विश्व के भूगोल पर भी टिकी रहती है। इसीलिये तो जब तीन अक्तूबर 1990 को बर्लिन की दीवार गिरा दी जाती है तो वह खुश होकर लिखता है कविता—बर्लिन की दीवार (पृष्ठ-74)—"इतिहास स्वयं पलट रहा है/पन्ने/इतिहास की पुस्तक के/जिसमें दर्ज है तीन अक्तूबर—1990 का दिन/सुनहरे अक्षरों में।"

संग्रह की अन्तिम कविता 'ठंडा सूरज' ऊपरी दृष्टि से तो प्रकृति चित्रण से सम्बन्धित कविता लगती है परन्तु गहराई से सोचें तो 'ठंडा सूरज' आज के सिद्धांतहीन राजनेता का प्रतीक है जो दयार्द्र होकर सरकारी कोष को बच्चों जैसे भोले सामान्य जन के लिये मुक्त हस्त व्यय नहीं करता।

इस प्रकार 'ठंडा सूरज' कविता-संग्रह पढ़ना एक ठंडी-तीखी तपिश के बीच से गुजरना है जो आपको तेरी-मेरी—उसकी दुनिया की जीती-जागती-गंधाती गलियों में ले जाती है और कुछ न कुछ सोचने के लिये विवश कर देती है। लेकिन इतनी अच्छी कविताओं को गुड़-गोबर बना देती हैं यहां-वहां बिखरी मुद्रण की अशुद्धियां (लगता है प्रूफ रीडर की प्रूफ रीडिंग भी होनी ही चाहिए थी) जोकि चावलों में एक आध कंकड़ की तरह नहीं बल्कि चावलों के वेश में ककड़ों जैसी लगती हैं। कवि अपनी बात कहने की झोंक में कहीं-कहीं कविताओं को बेवजह विस्तार देने (जैसे महानगर, वह लड़का, वसीयत तथा गरीबू कविताएं) की आदत से मजबूर है। आवरण पृष्ठ सुन्दर एवं सटीक है, जब कि संग्रह का मूल्य कुछ ज्यादा है। □

पुस्तक—'दिशाविद'

सम्पादिका—डॉ० सुमित्रा वरुण

प्रकाशक—पल्लव प्रकाशन

265 ए, राजापुर, इलाहाबाद

अंक– प्रथम, 1965

पृष्ठ—83

मूल्य—120/रुपये मात्र

□ डॉ० कौशल नन्दन गोस्वामी

आज हिन्दी कविता गद्यात्मक, ऊहा से भरी, एवं आन्तरिक असम्बद्धताओं से मुक्त होकर अरचना की ओर अग्रसर हो रही है तथा बौद्धिकता में उलझकर द्रवता से भी विमुख होती जा रही है। दूसरी ओर काव्य-मंच की वाहवाही के मोह में फंसकर हास्य, व्यंग्य तथा विडंबना से पूर्ण हल्की-फुल्की अशालीन कविताओं का दौर, विचारशील कवि की लेखनी से निःसृत विवेकपूर्ण भाव और विचारों की लोक-प्रियता में बाधक बन रहा है। ऐसी ऊहापोह की स्थिति में छटपटाती कविता की रुग्णता से निवृत्ति अपेक्षित है किन्तु डॉ० सुमित्रा वरुण के अनुसार सच्ची कविता युगीन आपाधापी मारा-मारी के वातावरण से अलग-थलग रहकर अपनी जगह बना सकती है। आज भी ऐसी कविताओं का सर्वथा अभाव नहीं है। कतिपय कवि कविता की अस्मिता को सुरक्षित कर पाने में सफल हुए भी हैं। हिन्दी कविता के संक्रमण काल में आलोच्य काव्य-संकलन एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है।

प्रस्तुत संग्रह कवियों की सशक्त रचनाओं का बहुरंगी, बहु-पंथी एवं बहुआयामी एक ऐसा स्तबक है, जिसमें भाव-अनुभूतियों के आकर्षक-मोहक पुष्प विकसित होकर शोभायमान हैं। इसमें कवियों की सत्यान्वित वाणी का अनूठा प्रभाव परिलक्षित होता है। भाव-विविधा पाठकों की हृदय-तन्त्री को झंकृत करने में सक्षम है। सम्पादिका ने 'तार सप्तक' और 'त्रयी' की परम्परा को आग बढ़ाते हुए संग्रह में नौ कवि-रत्नों की रचनाओं को समाहित किया है। इसमें कतिपय श्रेष्ठ नये कवियों को भी स्थापित किया गया है। विचार किया जाये तो ये नौ कवि अपनी रचनाधर्मिता और गुणवत्ता में अकबर के नवरत्नों से कम महत्त्वपूर्ण सिद्ध नहीं होंगे। वस्तुत: यह संग्रह नव रत्न जटित स्वर्ण मुद्रिका का स्मरण कराता है जिसमें प्रत्येक रत्न का अपना-अपना विशेष महत्व होता है।

संग्रह की प्रथम रचना 'पानी का सवाल' है। नई कविता के प्रणेता डॉ० जगदीश गुप्त गंगा तट पर रहकर भी सूखी धरती को देखकर क्षुब्ध हैं। कवि पूछता है—

सूखी हुई धरती
पर एक सवाल

नागफनी की मुद्रा में उगकर
देश के कर्णधारों से पूछता है
"पानी है पानी" ।

गुप्त जी ने दल बदलू/लम्बी छलांग लगाकर/कौन सी पार्टी रचेंगे' जैसी काव्य पंक्तियों द्वारा आज की राजनीति पर करारा प्रहार किया है ।

गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव की कविताओं में हृदय और मस्तिष्क का अद्भुत समन्वय है । इनमें अंतर्द्वन्द्व, युगीन विसंगतियों और अव्यवस्थाओं की पीड़ा निहित है । 'मैं बीज बोता हूं" में जहां निराशा के अंधकार में आशा की किरण दिखाई देती है, वहीं 'मेरी बेटी' में कवि अपनी विवशता में कह उठता है —

संभवत:

समय से पहले ही । बूढ़े हो जाने से । कहीं अच्छा है ।
छलावा बुनते हुए : भ्रम में जीना ।

इसी प्रकार 'क्या सचमुच' में जहां रेतीले तटों पर विसंगतियों की मछलियों का छटपटाना चित्रित है, वहीं 'सेतु' में कवि धूप को धूप और फूल को फूल कहने में भी भयभीत है क्योंकि भीगा चाबुक लिए विचरण करते अपरिचित प्रहरियों की मार उसे सता रही है । 'कौन है वह ?' भी गहरी संवेदना को संजोये है ।

डॉ नरसिंह श्रीवास्तव की रचनाओं में अनुभवशीलता का निचोड़ है । वस्तुत: वे प्रगतिवादी भौतिकता में जकड़ी मानसिकता को मुक्त कराने के पक्षधर हैं । संग्रह में इनकी तीन रचनाएं हैं—'द्विज', 'कबन्ध' और महानगर का एक दिन' । कवि इन रचनाओं में जहां अपने हिस्से के सूरज के टुकड़े को छोड़ना नहीं चाहता, वही धड़ और सिर के बीच समझौता करने का इच्छुक है । इसमें साथ ही महानगरीय जीवन की त्रासदी को उजागर करने में भी कवि ने सफलता हासिल की है ।

डॉ० मत्स्येन्दु शुक्ल धूमिल की भांति सपाट बयानी के पक्षधर हैं । उनमें अनुभव की प्रखरता, चिन्तन की गहनता और स्वच्छता अवलोकनीय है । वे भौतिक प्रगतिशीलता के समर्थक तथा सार्थक जीवन के प्रेरक हैं ।

'मेरे पास कुछ विचार हैं' कविता में मुक्ति की छटपटाहट है क्योंकि कवि समय के चक्रवात से पीड़ित है । 'तुम चला रहे थे हल' में कृषक के पौरुष की सराहना की गई है । कवि की दृष्टि में वह संघर्ष का संदेशवाहक और श्रम की प्रतिमूर्ति है । 'कुछ दिन बाद' में जहां कवि अंधों के निर्णय से चिन्तित है, वहीं सोच-समझकर चलने की प्रेरणा देता है । 'आग की नदी' और

ओम प्रकाश मिश्र की तीन रचनाएं –'स्वप्न भंग', 'यक्ष', 'सूखा और बरसात'— इस संग्रह में चयनित हैं । इनमें गहन संवेदनशीलता दिखाई देती है । कहीं ग्रामीण बाल-

गोपालों के स्वप्नभंग की चर्चा है, कहीं धनवानों को ऐशो अशरत भरी ज़िन्दगी का वर्णन है
तो कहीं प्रकृति से अपरिमित छेड़छाड़ को रोकने का संदेश है।

चन्द्रप्रकाश श्रीवास्तव अपनी कविताओं में ठोस यथार्थ, कोरे स्वप्न, संघर्षमय जीवन,
अनुभूत सत्य, एवं खट्टे-मीठे अनुभवों को संजोया है। 'गन्तव्य', 'अभिमन्यु तुम फिर हारोगे',
'मुक्त कर दो', 'मिलने के पहले और बाद', 'समुद्र अब मत उफनना' 'कुछ करो और आदमी'
—इन सात कविताओं में कवि ने आदमीयत की स्थापना का प्रयास किया है। कहीं कर्म
का संदेश है, कहीं जीवन की विद्रूपताओं के चित्र हैं, कहीं देवताओं से अपने शब्दों की पराजय
को सहन करने हेतु शक्ति-प्राप्ति की याचना है तो कहीं कवि गन्तव्य तक पहुंचने के लिए
आशा की किरण का सहारा लेता है। इनकी कविताओं में नई सोच, नये अंदाज प्रभाव-
शाली हैं।

हिन्दी कविता को नयी अभिव्यक्ति देने में सिद्धहस्त सुभाषचन्द्र गांगुली का विषय
चयन अद्भुत है। वे नवीन अनुभूतियों के कुशल चितेरे हैं। इस संग्रह में गांगुली जी की
नौ कविताएं हैं—अतीत, उफ़ान, खिलौने, पानी में महल, काला आकाश, समुन्दर की
तमन्ना, गन्दगी, असीमित, और आज की नारी। कवि ने इनमें युगीन परिवेश के सजीव
चित्र ही अंकित नहीं किये हैं वरन आज के मानव में ह्रास होती मानवता के प्रति चिन्ता
व्यक्त की हैं। कहीं नये परिधान में अतीत दिखाई देता है, कहीं कीमती खिलौनों की
अपनी सन्तान से अधिक महत्ता दर्शित है, कहीं भूमि न मिलने पर पानी में महल बनाने
की तमन्ना है, कहीं अल्पजों के उत्थान का भाव है तो कहीं जल प्रदूषण की समस्या को
उभारा गया है। 'आज की नारी' विषय वस्तु और अभिव्यक्ति दोनों दृष्टि से महत्वपूर्ण
कविता मानी जा सकती है। युगों से पाशविकता और शोषण की शिकार, अबला नारी-
जागरण का संदेश दिया है, उसके स्वाभिमान को उद्बोधित किया है। नारी-आक्रोश को
व्यक्त करते हुए कवि की चेतावनी है—

जग धात्री / विश्व स्रष्टा नारी का
अब यदि होगा / अपमान
मैं अपने स्तन में
विष भर दूंगी।

आत्म-प्रकाश की कविताओं में युवा पीढ़ी की अकुलाहट और त्रासदी का चित्रण है।
यद्यपि तनी हुई भौंहें और कसी हुई मुट्ठियां व्यवस्था की साजिश को तोड़ना चाहती
हैं किन्तु समय तेजी से निकलकर जोश को ठंडा कर देता है। इनकी रचनाओं में कहीं
समय की अस्थिरता दर्शित है। कहीं स्वप्न सो गया है, तो कहीं सुरक्षित होने का रहस्य
वर्णित है। सर्वत्र गहरी संवेदना के दर्शन होते हैं।

इस संग्रह की सम्पादिका डॉ० सुमित्रा वरुण की 'मेरी कविता नीला आसमान, फटे
पुराने दिन, प्रतिक्रिया, बिका सिर, और रिश्ता कविताएं भावोत्कृष्टता से आवेष्टित हैं।
कवयित्री ने जहां पवित्र कविता की अपवित्रता और दुरावस्था को उजागर किया है वहीं वह

दो हजार वर्ष बाद भी नीला बेदाग आसमान देखने की चाह रखती है । कहीं जीवन के उतार-चढ़ाव ने कवयित्री को झकझोरा है, कहीं प्रतिक्रिया के अभाव में अम्बर पर हृदय की स्याही का फैसला और धरती की आंखों का नम होना वर्णित है । डॉ० वरुण ने बिके सिर की अन्धता को कितनी मार्मिकता से प्रस्तुत किया है—

यह बिका सिर / देख अब पाता नहीं
कौन इसकी लाठियों से पिट गया
और जो रौंदा गया पैरों तले
वह कौन था ?

कवयित्री ने देशवासियों के उत्थान-पतन में देश की स्थिति का अवलोकन किया है क्योंकि मानव और उसके बीच एक अटूट रिश्ता है । भावानुभूति की अभिव्यंजना में कवयित्री की रचनाएं उत्कृष्ट व स्तुत्य हैं ।

संवेदना के धरातल पर जहां इस काव्य संग्रह की श्रेष्ठता सिद्ध होती है वहीं शिल्प की दृष्टि से भी इसे सराहनीय माना जाना चाहिए । कविताओं में कतिपय लम्बी है किन्तु अधिकांश आकार में अपेक्षाकृत छोटी हैं किन्तु हैं मार्मिक । छन्द के बंधन से मुक्त कविताओं में नये प्रतीक और नवीन बिम्बों द्वारा गहरी संवेदनाओं को अभिव्यक्ति मिली है । कतिपय उद्धरण द्रष्टव्य हैं :—

यह बिका सिर किस तरह सोचेगा अब (पृ० 27),
किन्तु धड़ और सिर में कोई न कोई रिश्ता है (पृ० 34-35)

घ्राणिक बिंब—

आम के बौर/महक के संदेश से/महुये की भीनी रसी/पुकार (पृ० 51)

चाक्षुष बिम्ब—

समुद्र फैल रहा है/पहाड़ डूब रहे हैं (पृ० 21)

इसी प्रकार 'उनकी अंगुलियों के स्पर्श से जीवित हो उठेंगे पहाड़' जैसी पंक्तियों में बिम्बों के सार्थक प्रयोग मिलते हैं ।

भाव-विषयानुरूप भाषा की नव्यता भी इस संग्रह का वैशिष्ट्य है । रचनाओं में कहीं अन्तर्मुखी, प्रतीक्षित, अहंता चकवात, उद्वेलित, कालान्तर, सहस्त्रों, परिधान, ऊर्जाहीन आदि संस्कृत शब्दावली का प्रयोग सार्थक है किन्तु इस संग्रह के अधिकांश कवियों ने संस्कृत की क्लिष्ट शब्दावली से बचने का प्रयास किया है जिससे पाठक भाव की गहराइयों तक सहज पहुंच सके । पार्टी, लिफ्ट, टेलेक्स, लिपिस्टिक, कैसेट, एअर-कण्डीशन्ड आदि प्रचलित अंग्रेजी शब्दों और अहदे वफा, मस्तैद हकदारी, हैवान, ताल्लुक, जोखिम, शामें, नश्तर, आदि उर्दू-फ़ारसी की शब्दावली के प्रयोग से भाषा में स्वाभाविकता और सहज बोध गम्यता का समावेश

हुआ है। 'घोड़े दौड़ाना' पौ बारह होना, 'घड़ियाली आंसू बहाना', 'पंख निकल आना', 'आंसू पीना', 'आंखों का पानी मर जाना' आदि मुहावरों के प्रयोग साभिप्राय तथा सार्थक हैं। कविताओं में अधिकतर अलंकारिक प्रयोग अनूठे हैं जिससे नव्यता और हृदयस्पर्शिता के गुणों का समावेश हुआ है : उदाहरणार्थ—

पानी के बीज, अन्याय के बंजर, क्रान्ति के खंजर, विसंगतियों की मछलियां, अनछुए स्वप्न, बादल-सा सरककर, सूर्य खोया-सा तलाश रहा पथ, तार की तरह चुभने लगेगी इत्यादि।

भावभंगिमाओं के साथ शैली की नवीनता भी इस संग्रह को प्रभावशाली बनाती है। सर्वत्र लयात्मकता विद्यमान है जिसे पाठक सहेज लेने में समर्थ होंगे।

काव्य संग्रह का शीर्षक 'दिशाविद्' सार्थक और अभिप्राय है क्योंकि चतुर्दिक परिवेश और जीवन की झलक इसमें मिलती है। मानों दिशाओं के ज्ञान का यह बोधक है। मुख-पृष्ठ आकर्षक और जिज्ञासा वर्धक है।

निष्कर्षतः यह काव्य संग्रह सुधी पाठकों के लिए बहुमूल्य सामग्री संजोए है। अस्तु पठनीय एवं संग्रहणीय है। □

एक रपट अलग

जीवन विकास संस्थान का "चतुर्थ वार्षिक सम्मेलन"

बस्ती ! जीवन विकास संस्थान बाघनगर बस्ती उ० प्र० का चतुर्थ वार्षिक सम्मेलन टाउन क्लब बस्ती में 1 दिसम्बर 96 को राष्ट्र समर्पित सम्मेलन 96 के रूप में मनाया गया । जिसमें राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न प्रांतों से आएं साहित्यकारों, कलाकारों, पत्रकारों, तथा समाज सेवियों को विभिन्न उपाधियों से बिभूषित कर सम्मानित किया गया ।

विशाल जन समूह को उपस्थिति में अभूतपूर्व उल्लास के साथ यह सम्मेलन सम्पन्न हुआ । समारोह का शुभारम्भ मुख्य अतिथि अपर जिलाधीश आगरा श्री चन्द्रभाल सुकुमार ने दीप प्रज्जवलित कर समारोह का उद्घाटन किया । संस्थान के संरक्षक डा० राजेन्द्र परदेसी ने समारोह का संचालन किया । इस समारोह की अध्यक्षता डा० जयनाथ मणि त्रिपाठी ने की । माल्यार्पण के बाद संस्थान के अध्यक्ष डा० शकील खान ने संस्था के उद्देश्यों पर और संस्था द्वारा किये गये अब तक के कार्यों पर प्रकाश डाला और कहा कि जीवन विकास संस्थान हमेशा सामाजिक विकास और साहित्यिक कार्यों में लगा रहेगा । उन्होंने युवाओं से अनुरोध किया कि अच्छे समाज की रचना के लिये हम सब एक जुट होकर आज से ही सामाजिक कार्यों में लग जाएं इसी से हम समाज को कुछ दे पाएंगे ।

नन्हें मुन्ने बच्चों ने स्वागत गीत प्रस्तुत कर वातावरण को साहित्य मय बना दिया । इसी के साथ बस्ती की उभरती प्रतिभाओं ने रंगारंग कार्यक्रम पेश किया । इसमें लोकनृत्य, राजस्थानी नृत्य एकता गीत एवं कृष्ण राधा प्रकरण पर मनोरम गीत प्रस्तुत किया । स्वागत अध्यक्ष श्रीमती रतिकला चौधरी ने आये अतिथियों का स्वागत किया ।

सम्मानित होने वालों में आगरा से आये श्री चन्द्रभाल सुकुमार, डा० आशा शुक्ल (कवयित्री जबलपुर) डा० धनंजय सिंह (उप सम्पादक) कादम्बिनी दिल्ली डा० रामेश्वर वर्मा

कलाकार कानपुर, डा० आई० ए० सिद्दीकी जाजिब गाजीपुरी (उप अधीक्षक डेहरी आनसोन)
डा० धरम सिंह (लखनऊ) उपर्युक्त सभी को 'साहित्य भास्कर'' अलंकरण से तथा गोरखपुर
दूरदर्शन के केन्द्र निदेशक डा० घनश्याम शर्मा को ''कला भास्कर'' से अभिनन्दित किया
गया थम्मन सिंह सरस लखनऊ, उमा श्री होशंगाबाद को साहित्य श्री श्री सुबोध श्रीवास्तव
स्वतन्त्र भारत कानपुर को ''पत्रकार श्री'' श्री श्याम सुन्दर व्यास (राजस्थान को) ''साहित्य
श्री ''डा० आर० एन० चौधरी को ''बस्ती सेवा श्री'' रूबी भूषण पटना को ''साहित्य रश्मि''
डा० रेखा व्यास दूरदर्शन दिल्ली ''कला श्री'' रचना सिंह रूचि दिल्ली को ''कला रश्मि''
डा० दशरथ प्रसाद यादव देवरिया को ''साहित्य श्री'' एवं श्री पंडित किशोर (सम्पादक
मंगलद्वीप) संगीतकार बम्बई को ''कला भास्कर'' से अलंकृत किया गया।

सम्मान उपरांत अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए मुख्य अतिथि चन्द्रभाल सुकुमार ने
इस संस्थान की सराहना करते हुए कहा कि जिन्दगी के व्यस्त क्षणों के मध्य महान साहि-
त्यिक धरती पर इस तरह का साहित्यिक आयोजन बहुत महत्वपूर्ण है और ऐतिहासिक भी।
यहां व्यक्ति अपनी दुनियादारी में इतना व्यस्त है कि वह समाज साहित्य के बारे में सोच
भी नहीं सकता। वही जीवन विकास संस्थान बस्ती के तत्वाधान में ऐसा साहित्यिक
सांस्कृतिक कार्यक्रम निश्चय ही प्रसंशनीय हैं।

संस्थान साहित्यकारों, कलाकारों, पत्रकारों एवं समाजसेवियों का सम्मान कर
बहुत ही तेजी के साथ समाज में परिवर्तन लाने का प्रयास कर रहा हैं। यह अपने कार्यों
से एक दिन अवश्य सफलता अर्जित करेगा।

सम्मान का कार्यक्रम समाप्त होने के बाद काव्य गोष्ठी का आयोजन किया गया जिस
में डा० आशा शुक्ला, डा० आई० ए० जजिब ने अपनी कविताओं और शेरो-शायरी से
महफिल में समां बांध दिया और खूब वाह-वाही लूटी। इसी के साथ दिल्ली दूरदर्शन से
आये रेखा व्यास और डा० धनंजय सिंह ने अपने गीतों से श्रोताओं को सोचने पर मजबूर
कर दिया। उमा श्री, सतीश सागर, रूबी भूषण की कविताओं को भी दर्शकों ने खूब
सराहा।

अन्त में समारोह की अध्यक्षता कर रहें डा० जयनाथ मणि त्रिपाठी ने समारोह की
सफलता पर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की और कहा कि जीवन विकास संस्थान द्वारा
आयोजित कार्यक्रम में दूर-दूर से आये साहित्यकारों, कलाकारों एवं साहित्य प्रेमियों से भरे
पण्डाल को देखकर हार्दिक सुख हो रहा है। यह ऐतिहासिक कार्य जो संस्थान कर रहा है
उसके लिए बधाई का पात्र हैं। इसके साथ आये अतिथियों का आभार व्यक्त किया। इस
आयोजन की सफलता में सतीश सागर, चन्द्र प्रकाश माया, अशोक अग्रवाल, डा० अनिल
कुमार श्रीवास्तव, राम सागर का विशेष योगदान रहा। संस्थान के अध्यक्ष डा० शकील
खान एवं संस्थान के संरक्षक डा० राजेन्द्र परदेसी ने सभी सम्मानित आगन्तुकों तथा
उत्साही श्रोताओं का आभार व्यक्त किया। इसी के साथ यह भव्य समारोह सम्पन्न हुआ।

□

चिट्ठी पन्ना —

जम्मू में डोगरी गद्य सम्मेलन के अवसर पर "शीराज़ा" के जो अंक उपलब्ध हुए थे यहां आते ही सब से पहले उन्हें पढ़ा ।

हरिकृष्ण कौल की कविता "डाकिए से" और महाराज कृष्ण सन्तोषी की कविता 'बीमारी के कविता' पढ़कर घाटी का दुखांत शिद्दत से भीतर ही भीतर कहीं घायल करता चला गया । विडंबना है कि मनुष्य की पीड़ा साहित्य के लिए वरदान बन जाती है । ऐसी अच्छी कविताओं को पाने के लिए क्या कुछ नहीं खोना पड़ा ? केवल इतनी-सी भरपाई

रहेगी ? लगातार दो-तीन अंकों में मनोज शर्मा की कविताओं ने ध्यान खींचा है । उनके लहजे की ताजगी ने चौंकाया भी है ।

कीर्ति केसर से बातचीत करते हुए नरेन्द्र मोहन ने संक्षेप में अहम मुद्दे उठाए हैं । उनकी अनुभूति, उनकी दृष्टि बहुत कुछ सोचने पर मजबूर करती है । उनके आलोचना सम्बन्धी नज़रियों में कहीं भी उलझाव नहीं हैं ।

रतनलाल शांत ने मोतीलाल क्यमू के नए नाटकों के बारे में सुसंगत परिचय दिया है । उन नाटकों का अध्ययन ज़रूरी लग रहा है । बेशक क्यमू ने कश्मीरी नाटक को नई धार दी है । इस क्षेत्र में वह जो काम कर रहे हैं, बहुत सोच-समझ कर रहे हैं । शीराजा के लिए वाकई आप मेहनत कर रही हैं ।

—वेद राही, मुंबई

आप द्वारा सम्पादित 'शीराज़ा' द्विमासिक के आलेख, संस्मरण, लोक संस्कृति, व्यंग्य, कविताएं विदेशी साहित्य और कहानियां इत्यादि स्तम्भ रोचक लगे । आपको बेहतर सम्पादन के लिए हृदय की गहराई से बधाई भेजता हूं ।

मैंने पत्रिका में अधिकतर स्तम्भ को पढ़ने का प्रयास किया है यदि कहा जाए कि आपने गागर में सागर भरने का प्रयास किया है बधाई !

—मदन हिमाचली ओच्छा घाट, सोलन

नया अंक अच्छे गेट आप के साथ अच्छा लगा। रोचक रचनाएं और सम्पादकीय, संक्षिप्त और चुस्त दुरुस्त। अपनी पहचान के लिए हमें अपनी जड़ों की ओर मुड़ना होगा।

☐ कृष्ण कलाधर मंदसौर

शीराज़ा का नया अंक मिलते ही पढ़ गया। पंजाबी साहित्य में 'मीठे बोल वचन अनमोल' कश्मीरी कृष्ण काव्य उज्जयनि भावधारा, और श्री विष्णु प्रभाकर कृत आशा रानी व्होरा पर विशिष्ट आलेख और कविताएं सुन्दर लगी। मुद्रण में त्रुटियां रही हैं। कृपया ध्यान दें।

☐ अभिजीत राय
देवरिया उ॰ प्र॰

शीराज़ा का अप्रैल-मई 1996 का अंक सुन्दर साज-सज्जा के साथ मिला।

सागर पंडित का लेख, 'और बहता रहा चिनाब', 'मीठे बोल वचन अनमोल', 'राधा रमण कृष्ण', विदेशी साहित्य में काइरेनिशड्र कविताएं जंसी रचनाएं बहुत पसन्द आयीं। महाराज कृष्ण सन्तोषी की कहानी 'असली नाम के पापा' का सिर्फ ट्रीटमेंट नया है।

☐ कौशल नंदन गर्ग
अहीरपाड़ा आगरा

इस अंक के लेखक—

1. डॉ० वैद्यनाथ लाभ,
बौद्ध शिक्षा विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू।

2. डॉ० मंजू उपाध्याय
संस्कृत विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू।

3. प्रद्युम्नदास वैष्णव
राष्ट्रभाषा महाविद्यालय
पञ्जरापाली
जिला रायपुर म० प्र० 493558।

4. लालिमाधर चक्रवर्ती
3-A गांधीनगर जम्मू।

5. डॉ. ओम प्रकाश द्विवेदी
हिन्दी विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू।

6. मनोज शर्मा
नबार्ड, शास्त्री नगर जम्मू।

7. शिव रैना
87, रघुनाथ पुरा जम्मू।

8. गोपाल बाबू शर्मा
82, सर्वोदय नगर सासनी गेट
अलीगढ़—(U.P.) 202001

9. राजेन्द्र परदेसी
62, आवास विकास कालोनी
बस्ती 272001 (U.P.)

10. अनिला सिंह चाड़क
केन्द्रीय विद्यालय स्टाफ क्वार्टस—7
गोल मार्कीट गांधीनगर जम्मू ।

11. ओ. पी. शर्मा सारथी
पीर मिट्ठा जम्मू ।

12. अनवार मिर्ज़ा
कलचरल अकादमी जम्मू ।

13. मुहम्मद अयूब बेताब
इकरा किताब घर
शोपियां, कश्मीर (J & K)

14. इच्छुपाल सिंह
कलचरल अकादमी जम्मू ।

15. भागीरथ भार्गव
केन्द्रीय विद्यालय फुलेरा 303339
ज़िला जयपुर

16. अभिशाप
C/o क्षमा बख्शी
वार्ड नं० 4 रामनगर 182122

17. कृष्णकुमार अस्थाना
टाईप III/171
पाकेट—1, केन्द्रांचल, सुलेम सराय
P.O. घूमन गंज, इलाहाबाद (U.P.)

18. डॉ० अशोक जेरथ
केन्द्र निदेशक, आकाशवाणी
जालन्धर पंजाब

19. डॉ. कामिनी बाली
B—1/104 जनकपुरी
नई दिल्ली—110058

20. हरदर्शन सहगल
5—ई-9 संबाद
डुप्लेक्स कालोनी
बीकानेर, 334003 (राज०)

21. जसविन्दर शर्मा
5060/1 कैटेगरी III
मार्डन काम्पलैक्स मनीमाजरा
चण्डीगढ़ U.T. 168101।

22. रामकुमार आत्रेय
साहित्य कुटीर
V.P.O. करोड़ा,
हरियाणा 136043

23. डॉ० कौशलनंदन गोस्वामी
हिन्दी विभाग।
राजेन्द्र प्रसाद P.G. कालेज
मीरगंज बरेली उ. प्र.

24. डॉ. शकील खान
जीवन विकास संस्थान
बाघनगर
बस्ती 272002 (U.P.)